

मैं
बुद्ध
बोल रहा हूँ



सं. अनीता गौड़

में
बुद्ध
बोल रहा हूँ



सं. अनीता गौड़



मैं बुद्ध बोल रहा हूँ

सं. अनीता गौड़

प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली

अनुक्रमणिका

जीवन परिचय

मैं बुद्ध बोल रहा हूँ

जीवन परिचय

गौ तम बुद्ध का जन्म ईसा से 563 साल पहले नेपाल के लुंबिनी वन में हुआ। उनकी माता कपिलवस्तु की महारानी महामाया देवी जब अपने माता-पिता के पास देवदह जा रही थीं, तो उन्होंने रास्ते में लुंबिनी वन में बुद्ध को जन्म दिया।

आज कपिलवस्तु और देवदह के बीच नौतनवा स्टेशन से 8 मील दूर पश्चिम में रुक्मिनदेई नामक स्थान के पास उस काल में लुंबिनी वन हुआ करता था।

उनका जन्म नाम सिद्धार्थ रखा गया। सिद्धार्थ के पिता शुद्धोदन कपिलवस्तु के राजा थे और उनका सम्मान नेपाल ही नहीं समूचे भारत में था। सिद्धार्थ की मौसी गौतमी ने उनका लालन-पालन किया, क्योंकि सिद्धार्थ के जन्म के सात दिन बाद ही उनकी माँ का देहांत हो गया था। शाक्य वंश में जन्मे सिद्धार्थ का सोलह वर्ष की उम्र में दंडपाणि शाक्य की कन्या यशोधरा के साथ विवाह हुआ। यशोधरा से उनको एक पुत्र मिला, जिसका नाम राहुल रखा गया। बाद में यशोधरा और राहुल दोनों बुद्ध के भिक्षु हो गए थे।

विद्वानों ने महात्मा बुद्ध के बारे में शुद्धोदन को पहले ही सूचित कर दिया था कि यह बालक या तो चक्रवर्ती राजा होगा या विरक्त होकर संसार का कल्याण करेगा। पिता होने के नाते शुद्धोदन इस बात को लेकर चिंतित रहते थे। इस भविष्यवाणी को सुनकर राजा शुद्धोदन ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार सिद्धार्थ को दुःख से दूर रखने की कोशिश की। फिर भी उनकी दृष्टि चार दृश्यों पर पड़ी—एक बूढ़े अपाहिज आदमी, एक बीमार आदमी, एक अंतिम संस्कार को ले जाती हुई लाश और एक साधु। इन चार दृश्यों को देखकर सिद्धार्थ समझ गए कि सबका जन्म होता है, सबका बुढ़ापा आता है, सबको बीमारी होती है और एक दिन सबकी मौत होती है। उन्होंने अपना धनवान जीवन, जाति, पत्नी, बंधु सबको छोड़कर साधु का जीवन अपनाने का निर्णय ले लिया। ताकि वे जन्म, बुढ़ापे, दर्द, बीमारी और मौत के बारे में कोई उत्तर खोज पाएँ।

चूँकि बुद्ध का मन संसार से बिल्कुल ही विरक्त रहता था, इसलिए अपने राजसुखों को त्यागकर तथा मानव जाति एवं जीव-जंतुओं के कल्याण हेतु छोटी अवस्था में ही वे एक दिन आधी रात को अपनी पत्नी व पुत्र को सोया छोड़कर, राजसी वेशभूषा त्यागकर अमरता की खोज में निकल पड़े।

बुद्ध को न तो स्वर्ग पाने की लालसा थी, न ही ऐश्वर्य सुख भोगने की कामना थी, क्योंकि उन्होंने इन सब चीजों पर विजय प्राप्त कर ली थी। सिद्धार्थ ने पाँच ब्राह्मणों के साथ अपने प्रश्नों के उत्तर ढूँढने शुरू किए। उन्होंने उचित ढंग से ध्यान करने की क्रिया सीखी, परंतु उन्हें उत्तर नहीं मिले। फिर उन्होंने तपस्या करने की कोशिश की। वे इस कार्य में भी अपने गुरुओं से भी ज्यादा प्रवीण निकले, परंतु उन्हें अपने प्रश्नों के उत्तर फिर भी नहीं मिले। फिर उन्होंने कुछ साथी इकट्ठे किए और अधिक कठोर तपस्या करने चल दिए।

ऐसा करते-करते उन्हें छह वर्ष बीत गए, इस बीच कितनी ही बार वे भूख के कारण मरते-मरते बचे, लेकिन अब तक उन्हें अपने प्रश्नों के उत्तर नहीं मिल पाए थे। तब वे फिर कुछ और करने के बारे में सोचने लगे। इस समय, उन्हें अपने बचपन का एक पल याद आया, जब उनके पिता फसल बोने के लिए खेत तैयार करना शुरू कर रहे थे। उस समय की बात याद करके वे आनंद से भर गए और उसी आनंद में उनको ध्यान-समाधि लग गई, तब उन्हें ऐसा महसूस हुआ कि समय स्थिर हो गया है। यही वह समय था, जब उनको बोधितत्व प्राप्त हुआ। इसके बाद कठोर तपस्या छोड़कर उन्होंने आर्य अष्टांग मार्ग ढूँढ निकाला, जो बीच का मार्ग भी कहलाया जाता है। उसके बाद वे लोगों को सद्मार्ग दिखाने के लिए चल पड़े।

सर्वप्रथम सारनाथ (वाराणसी के समीप) में उन्होंने पाँच भिक्षुओं के सामने धम्मचक्कपवनत्तनसुत (प्रथम उपदेश) दिया।

और कुशीनारा वह स्थान है, जहाँ भगवान् बुद्धदेव ने महापरिनिर्वाण ग्रहण किया।

महात्मा बुद्ध ने ईसा से छह सौ वर्ष पूर्व भारत में धर्म की स्थापना की थी। महात्मा बुद्ध धर्म का प्रवर्तन नहीं चाहते थे, बल्कि उसमें सुधार करना चाहते थे, क्योंकि वे कल्याण में विश्वास रखते थे। उनका धर्म तीन बातों की खोज में निहित है—

1. प्रथम, संसार में अशुभ है।
2. द्वितीय, इस अशुभ का क्या कारण है? उन्होंने बताया कि यह मनुष्य की दूसरों से ऊँचे चढ़ जाने की इच्छा में है। यह वह मनुष्य दोष है, जिसका निवारण निस्वार्थता से किया जा सकता है।
3. तीसरे, इस अशुभ का इलाज निस्वार्थ बनकर किया जा सकता है।

महात्मा बुद्ध ने कहा कि कभी भी बल से किसी भी समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता है, यही आधार ही भगवान् बुद्ध के धर्म का मुख्य आधार था। महात्मा बुद्ध समता

के महान् उपदेष्टा थे।

उनका कहना था कि आध्यात्मिकता प्राप्त करने का अधिकार प्रत्येक स्त्री-पुरुष को है। मानव की समता उनके महान् संदेशों में से एक है।

उनका धर्म-सिद्धांत यह था कि मनुष्य दुःख इसलिए भोगता है कि वह मात्र स्वार्थी है। भगवान् बुद्ध ने कहा है कि समस्त प्राणियों के कर्म दस बुराइयों में ही निहित हैं। अगर इनसे बचा जाए तो सबकुछ ठीक हो जाएगा।

हत्या, चोरी तथा व्यभिचार ये तीनों बुराइयाँ शरीर की बुराइयाँ हैं। झूठ बोलना, गाली देना, बकवास करना तथा निंदा करना ये चार बुराइयाँ जीवन की हैं। लालच, द्वेष तथा त्रुटि ये तीन मन की बुराइयाँ हैं। अगर इन दसों बुराइयों से मनुष्य बच जाए तो वह सर्वश्रेष्ठ मनुष्य हो जाता।

भगवान् बुद्ध के उपदेश

हिंदू-धर्म में वेदों का जो स्थान है, बौद्ध धर्म में वही स्थान पिटकों का है। भगवान् बुद्ध ने अपने हाथ से कुछ नहीं लिखा था। उनके उपदेशों को उनके शिष्यों ने पहले कंठस्थ किया, फिर लिख लिया। वे उन्हें पेटियों में रखते थे। इसी से 'पिटक' नाम पड़ा। पिटक तीन हैं—

1. **विनय पिटक**— इसमें विस्तार से वे नियम दिए गए हैं, जो भिक्षु-संघ के लिए बनाए गए थे। इनमें बताया गया है कि भिक्षुओं और भिक्षुणियों को प्रतिदिन के जीवन में किन-किन नियमों का पालन करना चाहिए।
2. **सुत्त पिटक**— सबसे महत्त्वपूर्ण पिटक सुत्त पिटक है। इसमें बौद्ध धर्म के सभी मुख्य सिद्धांत स्पष्ट करके समझाए गए हैं। सुत्त पिटक पाँच निकायों में बँटा है—
 1. दीघ निकाय,
 2. मज्झिम निकाय,
 3. संयुत्त निकाय,
 4. अंगुत्तर निकाय और
 5. खुद्दक निकाय।खुद्दक निकाय सबसे छोटा है। इसके 15 अंग हैं। इसी का एक अंग 'धम्मपद' है। एक अंग 'सुत्त निपात' है।

3. **अभिधम्म पिटक**— अभिधम्म पिटक में धर्म और उसके क्रियाकलापों की व्याख्या शास्त्रसम्मत ढंग से की गई है। वेदों में जिस तरह ब्राह्मण-ग्रंथ हैं, उसी तरह पिटकों में अभिधम्म पिटक हैं।

धम्मपद

हिंदू-धर्म में गीता का जो स्थान है, बौद्ध धर्म में वही स्थान धम्मपद का है। गीता जिस प्रकार महाभारत का एक अंश है, उसी तरह धम्मपद सुत्त पिटक के खुद्दक निकाय का एक अंश है।

धम्मपद में 26 वग्ग और 423 श्लोक हैं। बौद्ध धर्म को समझने के लिए अकेला धम्मपद ही काफी है। मनुष्य को अंधकार से प्रकाश में ले जाने के लिए यह प्रकाशमान दीपक है। यह सुत्त पिटक के सबसे छोटे निकाय खुद्दक निकाय के 15 अंगों में से एक है।

त्रिपिटक में मुख्यतया भगवान् बुद्ध की धर्मवाणी संग्रहीत है, जो साधारणतया मानव मात्र के लिए और विशेषतया विपश्यी साधकों के लिए प्रभूत पावन प्रेरणा और महामांगलिक मार्गदर्शन लिये हुए है। संपूर्ण त्रिपिटक में 84,000 धर्म शिक्षापद (धर्म स्कंध) हैं, जिनमें 82,000 भगवान् बुद्ध के और 2,000 उन भिक्षुओं के हैं, जो भगवान् के परम शिष्य थे।

भगवान् के जीवनकाल में समग्र बुद्धवाणी इन नौ भागों में विभाजित की गई थी—सुत्तं, गेय्यं, वैयाकरणं, गाथा, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं और वेदल्लं। संभवतः इन्हीं को भगवान् ने धम्म, विनय और मातिका कहा और आगे चलकर संभवतः ये ही सुत्तपिटक, विनयपिटक और अभिधम्मपिटक के नाम से संपादित एवं संग्रहीत हुए।

धर्मवाणी को इन तीन विभागों में पालकर, सँभालकर रखनेवाला संपूर्ण साहित्य ही त्रिपिटक कहलाया। यह साहित्य तत्कालीन उत्तर भारत की प्राकृतिक जनभाषा में है। इस भाषा ने इसे पालकर, सँभालकर रखा, अतः वह पालि कहलाई। ये दोनों मिलकर त्रिपिटक-पालि कहलाए।

॥ ओम्मणि पदमे हूम॥ यह षडाक्षरीय मंत्र है, जिसका उल्लेख अवलोकितेश्वरा में किया गया है। यह मंत्र सभी प्रकार के खतरों से सुरक्षा के लिए जपा जाता है। बताया जाता है कि जो कोई इस मंत्र को जपता है वह सब खतरों से सुरक्षित हो जाता है। इस मंत्र का जप बौद्ध धर्म की महायान शाखा में प्रमुख रूप से किया जाता है।



यह मंत्र अकसर प्रार्थना चक्र, स्तूपों की दीवार, धर्मस्थानों के पत्थरों, मणियों आदि में खुदा हुआ या चित्रित रूप में मिल जाता है। जिस प्रार्थना चक्र पर यह मंत्र खुदा होता है उसको एक बार घुमाने पर माना जाता है कि उसने इस मंत्र को दस लाख बार जपा है। यह मंत्र अँगूठी या अन्य आभूषणों में भी मुद्रित रहता है।

पारंपरिक मंडल

मंडल यानी ऐसा तांत्रिक यंत्र, जो गोलाकार होता है। यह ध्यान का यंत्र माना जाता है। यह दृश्य रूप से ध्यान और मनन करने में सहायता करता है। इसके इस्तेमाल से भक्तजनों को सिद्धि की प्राप्ति होती है।



इसके कई प्रकार होते हैं। इनमें से सबसे प्रचलित 'ध्यानी बुद्ध' का मंडल है। यह सबसे प्राचीन तांत्रिक यंत्र है। इसे शुद्धिकरण का महल कहा जाता है। यह एक जादुई चौकोर होता है जो कि अध्यात्म की राह में आनेवाले अवरोधों को हटाकर चित्त का शुद्धिकरण करता है।

ध्यान चक्र

यह केवल तिब्बती बौद्ध भक्तों द्वारा इस्तेमाल किया जाता है। इसमें 'ओम्मणि पदमे हूम्' मंत्र खुदा होता है। प्रार्थना चक्र, जो छोटे आकार के होते हैं, वे आम लोगों और प्रवासियों द्वारा इस्तेमाल में लाए जाते हैं। बड़े आकार के चक्र मठों, स्तूपों में इस्तेमाल होते हैं।



बौद्ध धर्म के आठ शुभ चिह्न निम्न हैं—

(1) श्वेत शंख

श्वेत शंख जो दाहिनी ओर कुंडलित हो, धर्म की मधुर, गहरी और संगीतमय शिक्षा को दर्शाता है। यह हर प्रकार के व्यवहारवाले शिष्यों के लिए उपयुक्त है। यह शंख उनको अज्ञानता से उठाकर अच्छे कर्म और दूसरों की भलाई करने की प्रेरणा देता है।



(2) विजयी ध्वज

विजयी ध्वज जीवन में शारीरिक, मानसिक और अन्य गतिरोधों के विरुद्ध पाई गई विजय का प्रतीक है। यह बौद्ध धर्म के सिद्धांतों की विजय का भी प्रतीक है।



(3) स्वर्ण मछली

स्वर्ण मछली सभी जीवों के निर्भय जीवन जीने का प्रतीक है। जैसे मछली निश्चिंत होकर तैरती है, वैसे ही सभी जीवों को निर्भय होकर जीना चाहिए।



(4) पवित्र छत्री

पवित्र छत्री मनुष्यों को बीमारी, विपत्ति और सभी विनाशी ताकतों से सुरक्षित रखने का प्रतीक है। यह तेज धूप से छाया का आनंद लेने का भी प्रतीक है।



(5) धर्मचक्र

यह बौद्ध धर्म के सभी प्रकार के सिद्धांतों, जिनका कि भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेशों में उल्लेख किया है, का प्रतीक है। यह निरंतर विकास की ओर इंगित करता है।



(6) शुभ आकृति

शुभ आकृति का चित्रण धार्मिक और भौतिक जीवन के परनिर्भरता का प्रतीक है। यह बौद्ध धर्म के अष्टांगिक मार्ग की ओर भी इंगित करता है।



(7) कमल का फूल

बौद्ध धर्म में कमल के फूल का अत्यधिक महत्त्व है। यह शरीर, वचन और मन के शुद्धिकरण का प्रतीक है।



(8) शुभ कलश

शुभ कलश दीर्घायु, सुख-संपत्ति, आनंद, अनवरत वर्षा व जीवन के।



बौद्ध धर्म के अव्याकृत प्रश्न

निर्वाण ही सत्य, बाकी सब असत्य

अव्याकृत का अर्थ है, जो व्याकरण-सम्मत नहीं है। जब भगवान् बुद्ध से जीव, जगत् आदि के विषय में चौदह दार्शनिक प्रश्न किए जाते थे तो वे सदा मौन रह जाते थे। ये प्रसिद्ध चौदह प्रश्न निम्नांकित हैं—

1-4. क्या लोक शाश्वत है? अथवा नहीं? अथवा दोनों? अथवा दोनों नहीं?

5-8. क्या जगत् नाशवान है?अथवा नहीं?अथवा दोनों?अथवा दोनों नहीं?

9-12. तथागत देह त्याग के बाद भी विद्यमान रहते हैं?अथवा नहीं?अथवा दोनों?अथवा दोनों नहीं?

13-14. क्या जीव और शरीर एक हैं?अथवा भिन्न?

उक्त प्रश्न पर बुद्ध मौन रह गए। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वे इनका उत्तर नहीं जानते थे। उनका मौन केवल यही सूचित करता है कि यह व्याकरण-सम्मत नहीं थे। इनसे जीवन का किसी भी प्रकार से भला नहीं होता। उक्त प्रश्नों के पक्ष या विपक्ष में दोनों के ही प्रमाण या तर्क जुटाए जा सकते हैं। इन्हें किसी भी तरह सत्य या असत्य सिद्ध किया जा सकता है। यह पारमार्थिक दृष्टि से व्यर्थ है।

उक्त संबंध में बुद्ध ने कहा है कि भिक्षुओं! कुछ श्रमण और ब्राह्मण शाश्वतवाद को मानते हैं। दृष्टियों के जाल में और बुद्धि की कोटियों में फँसने के कारण ये लोग इन मतों को मानते हैं। तथागत इन सबको जानते हैं और इनसे भी अधिक जानते हैं। किंतु तथागत सबकुछ जानते हुए भी जानने का अभिमान नहीं करते हैं। इन बुद्धि कोटियों में न फँसने के कारण तथागत निर्वाण का साक्षात्कार करते हैं।

बौद्ध दर्शन के मूल सिद्धांत

बौद्ध दर्शन तीन मूल सिद्धांत पर आधारित माना गया है—1. अनीश्वरवाद, 2. अनात्मवाद और 3. क्षणिकवाद। यह दर्शन पूरी तरह से यथार्थ में जीने की शिक्षा देता है।

1. अनीश्वरवाद

बुद्ध ईश्वर की सत्ता नहीं मानते क्योंकि दुनिया प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम पर चलती है। प्रतीत्यसमुत्पाद अर्थात् कारण-कार्य की शृंखला। इस शृंखला के कई चक्र हैं, जिन्हें बारह अंगों में बाँटा गया है। अतः इस ब्रह्मांड को कोई चलानेवाला नहीं है। न ही कोई उत्पत्तिकर्ता, क्योंकि उत्पत्ति कहने से अंत का भान होता है। तब न कोई प्रारंभ है और न अंत।

2. अनात्मवाद

अनात्मवाद का यह मतलब नहीं कि सच में ही 'आत्मा' नहीं है। जिसे लोग आत्मा समझते हैं, वह चेतना का अविच्छिन्न प्रवाह है। यह प्रवाह कभी भी बिखरकर जड़ से बद्ध हो सकता है और कभी भी अंधकार में लीन हो सकता है।

स्वयं के होने को जाने बगैर आत्मवान नहीं हुआ जा सकता। निर्वाण की अवस्था में ही स्वयं को जाना जा सकता है। मरने के बाद आत्मा महा सुसुप्ति में खो जाती है। वह अनंतकाल तक अंधकार में पड़ी रह सकती है या तत्क्षण ही दूसरा जन्म लेकर संसार के चक्र में फिर से शामिल हो सकती है। अतः आत्मा तब तक आत्मा नहीं जब तक कि बुद्धत्व घटित न हो। अतः जो जानकार हैं वे ही स्वयं के होने को पुख्ता करने के प्रति चिंतित हैं।

3. क्षणिकवाद

इस ब्रह्मांड में सबकुछ क्षणिक और नश्वर है। कुछ भी स्थायी नहीं। सबकुछ परिवर्तनशील है। यह शरीर और ब्रह्मांड उसी तरह है जैसे कि घोड़े, पहिए और पालकी के संगठित रूप को रथ कहते हैं और इन्हें अलग करने से रथ का अस्तित्व नहीं माना जा सकता।

उक्त तीन सिद्धांत पर आधारित ही बौद्ध दर्शन की रचना हुई। इन तीन सिद्धांतों पर आगे चलकर थेरवाद, वैभाषिक, सौत्रांत्रिक, माध्यमिक (शून्यवाद), योगाचार (विज्ञानवाद) और स्वतंत्र योगाचार का दर्शन गढ़ा गया। इस तरह बौद्ध धर्म के दो प्रमुख संप्रदायों के कुल छह उपसंप्रदाय बने। इन सबका केंद्रीय दर्शन रहा प्रतीत्यसमुत्पाद।

बौद्ध स्तूप प्रतीक

धर्मचक्र

यह धर्मचक्र बौद्ध धर्म के नियम, जन्म और पुनर्जन्म की निरंतरता का प्रतीक होता है। ये गोल आकार के होते हैं, जिनमें चार ताड़ियाँ होती हैं। ताड़ियाँ चार जिनों या बुद्ध के जीवन के चार निर्णायक क्षणों को इंगित करती हैं।



अगर आठ ताड़ियाँ हों तो ये 'अष्टांगिक मार्ग' को दर्शाती हैं। सम्राट् अशोक का धर्मचक्र बहुत प्रसिद्ध है, लेकिन इसके पहले भी भारतीय कला में इसका इस्तेमाल किया जाता रहा है। सामान्यतः चक्र को चार दिशाओं की ओर मुख किए हुए सिंहों के ऊपर बनाया जाता है।

पारंपरिक घंटी

घंटियाँ आठ, बारह, सोलह, अठारह या बाईस अंगुल की ऊँचाईवाली हो सकती हैं। इनका आकार नीचे से गोल होता है और उसके ऊपर देवी प्रज्जनापरामिता का चेहरा बना होता है। सबसे ऊपर कमल, चाँद और वज्र बने होते हैं। वज्र के साथ इस्तेमाल करने पर घंटी ज्ञान को इंगित करती है।



वज्र

वज्र में नौ, पाँच या तीन ताड़ियाँ होती हैं। शांतिमय वज्र के छोर पर ताड़ियाँ आपस में मिली हुई होती हैं, जबकि हिंसक वज्र के छोर थोड़े फैले हुए होते हैं।



बौद्ध मुद्राएँ

(1) गतिमान धर्मचक्र की मुद्रा

दाहिने हाथ का अँगूठा और तर्जनी अँगुली बुद्धि और जुड़ने की कला को इंगित करती हैं। बाकी की तीन खड़ी हुई अँगुलियाँ बौद्ध शिक्षा का प्रतीक है। बाएँ हाथ की मुद्रा मनुष्य की मिश्रित क्षमताओं को इंगित करती है, जिस पर कि वह ज्ञान के पथ और जुड़ने की ओर बढ़ता है।



(2) ध्यान की मुद्रा

मानव तंत्रिका प्रणाली जो कि मस्तिष्क के उस भाग से जुड़ी होती है, जो परमानंद का कारक होता है, इसकी तंत्रिकाएँ हाथ के अँगूठों से होकर गुजरती हैं। इसे बौद्ध धर्म में बोधिचित्त कहा जाता है। इस मुद्रा में दोनों हाथों के अँगूठों का परस्पर जोड़ या मिलन बोधिचित्त के भविष्य में विकास की ओर इंगित करता है।



(3) सर्वोच्च प्राप्ति की मुद्रा

दाहिने हाथ की मुद्रा सर्वोच्च प्राप्ति को इंगित करती है और बाएँ हाथ की मुद्रा ध्यान-चिंतन को दर्शाती है। ये दोनों मिलकर बुद्ध की सर्वोच्च शक्ति की ओर इंगित करते हैं। बुद्ध ध्यान में इस मुद्रा में बैठते थे।



(4) भूमि पर दबाव देने की मुद्रा

दाहिने हाथ की मुद्रा भूमि पर दबाव देने की तथा बाएँ हाथ की मुद्रा ध्यान करने की होती है। ये दोनों मिलकर बुद्ध द्वारा सभी गतिरोधों पर पाई विजय को इंगित करती हैं। भूमि को छूने की मुद्रा बुद्ध के उस विजय का चिह्न है, जब उन्होंने राक्षस मारा पर विजय पाई थी।



ध्यानावस्था में गतिशील धर्मचक्र की मुद्रा दाहिने हाथ की मुद्रा घूमते हुए धर्मचक्र और बाएँ हाथ की मुद्रा ध्यान-चिंतन को दर्शाती है। दोनों साथ मिलकर ध्यान के दौरान बौद्ध धर्म के शिक्षण की ओर इंगित करते हैं।

(5) ध्यानावस्था में गतिशील धर्मचक्र की मुद्रा

दाहिने हाथ की मुद्रा घूमते हुए धर्मचक्र और बाएँ हाथ की मुद्रा ध्यान-चिंतन को दर्शाती है। दोनों साथ मिलकर ध्यान के दौरान बौद्ध धर्म के शिक्षण की ओर इंगित करते हैं।



भगवान् बुद्ध के निर्वाण के मात्र 100 वर्ष बाद ही बौद्धों में मतभेद उभरकर सामने आने लगे थे। वैशाली में संपन्न द्वितीय बौद्ध संगीति में थेर भिक्षुओं ने मतभेद रखनेवाले भिक्षुओं को संघ से बाहर निकाल दिया था। अलग हुए इन भिक्षुओं ने उसी समय अपना अलग संघ बनाकर स्वयं को 'महासांघिक' और जिन्होंने निकाला था, उन्हें 'हीनसांघिक' नाम दिया, जिसने कालांतर में महायान और हीनयान का रूप धारण कर लिया।

हीनयान में अष्टांगिक मार्ग पर जोर है, जिसके अनुसार भगवान् बुद्ध कहते हैं कि अति दो प्रकार की होती है। एक अति है—भोग-विलास में, काम-सुख में ऊपर से नीचे तक डूब जाना। गिरे हुए, भूले हुए लोग इस अति में पड़ते हैं। दूसरी अति है—शरीर को अत्यधिक पीड़ा देकर तपस्या करना। अपने को विभिन्न प्रकार से पीड़ा पहुँचाना। दोनों अति को छोड़कर तथागत ने एक मध्यम मार्ग खोज निकाला, जिसे अष्टांगिक मार्ग कहते हैं। यह

मार्ग शांति, ज्ञान और निर्वाण देनेवाला है। अमृत की ओर ले जानेवाले मार्गों में अष्टांगिक मार्ग परम मंगलमय मार्ग है। जो इस प्रकार है—

1. **सम्यक् दृष्टि** : दुःख का ज्ञान, दुःखोदय का ज्ञान, दुःखनिरोध का ज्ञान और दुःख निरोध की ओर ले जानेवाले मार्ग का ज्ञान, इस आर्य सत्य-चतुष्टय के सम्यक् ज्ञान को सम्यक् दृष्टि कहते हैं।
2. **सम्यक् संकल्प** : निष्कर्मता-संबंधी अर्थात् अनासक्ति संबंधी संकल्प, अहिंसा-संबंधी संकल्प और अद्रोह-संबंधी संकल्प को सम्यक् संकल्प कहते हैं।
3. **सम्यक् वचन** : असत्य वचन छोड़ना, पिशुन वचन अर्थात् चुगलखोरी छोड़ना, कठोर वचन छोड़ना और बकवास छोड़ना सम्यक् वचन है।
4. **सम्यक् कर्मात्** : प्राणी हिंसा से विरत होना, बिना दी हुई वस्तु न लेना और कामोपभोग के मिथ्याचार (दुराचार) से विरत होना ही सम्यक् कर्मात् है।
5. **सम्यक् आजीव** : आजीविका से मिथ्या साधनों को छोड़कर अच्छी-सच्ची आजीविका से जीवन व्यतीत करना सम्यक् आजीव है।
6. **सम्यक् व्यायाम** : 'अकुशल' धर्म अर्थात् पाप उत्पन्न न होने देने के लिए निश्चय करना, परिश्रम करना, उद्योग करना, चित्त को पकड़ना और रोकना तथा कुशल धर्म अर्थात् सत्यकर्म की उत्पत्ति, स्थिति, विपुलता और परिपूर्णता के लिए उद्योग आदि करना ही सम्यक् व्यायाम है।
7. **सम्यक् स्मृति** : अशुचि, जरा, मृत्यु आदि दैहिक धर्मों का अनुभव करना तथा उद्योगशील अनुभव ज्ञानयुक्त हो लोभ और मानसिक संताप को छोड़कर जगत् में विचरना ही सम्यक् स्मृति है।
8. **सम्यक् समाधि** : कुशल धर्मों अर्थात् सन्मनोवृत्तियों में समाधान रखना ही सम्यक् समाधि है। इस सम्यक् समाधि की प्रथम, द्वितीय, तृतीय और ध्यानरूपी चार सीढ़ियाँ हैं। पहले ध्यान में वितर्क और विचार का लोप हो जाता है। प्रीति, सुख और एकाग्रता ये तीनों मनोवृत्तियाँ ही रहती हैं। तीसरे ध्यान में प्रीति का लय हो जाता है, केवल सुख और एकाग्रता ही रहती है। चौथे ध्यान में सुख भी लुप्त हो जाता है, उपेक्षा और एकाग्रता ही रहती है।

इसी प्रकार महायान में पारमिता मार्ग पर जोर है। 'पारमिता' शब्द 'परम' से बना है। इसका अर्थ सबसे ऊँची अवस्था है। पारमिताएँ मुख्य रूप से छह प्रकार की होती हैं—

1. **दान-पारमिता** : दूसरों के हित के लिए अपना स्वत्व छोड़ने का नाम दान है। दान-पारमिता तीन बातों से होती है—
 1. जब दान के पात्र की कोई सीमा नहीं रहती। प्राणीमात्र दान का पात्र बन जाता है।
 2. जब देने की वस्तु की कोई सीमा नहीं रहती। मनुष्य अपना सबकुछ दूसरों के हित में लगाने को तैयार हो जाता है।
 3. जब दान के बदले में कुछ भी पाने की आकांक्षा नहीं रहती।
2. **शील-पारमिता** : 'शील' यानी सदाचार। अहिंसा, सत्य आदि नैतिक नियमों को चोटी पर पहुँचाने का नाम शील-पारमिता है। हिंसा न शरीर से होनी चाहिए, न वचन से, न मन से। इसी तरह दूसरे नियमों का पूरा-पूरा पालन होना चाहिए।
3. **शांति-पारमिता** : 'शांति' यानी क्षमा, सहनशीलता। चाहे जितना कष्ट आए, धैर्य न छोड़ना, विचलित न होना। मरने जैसा कष्ट होने पर भी शांति से उसे झेल लेना शांत-पारमिता है।
4. **वीर्य-पारमिता** : 'वीर्य' यानी उत्साह। अशुभ को छोड़कर पूरे उत्साह के साथ आगे बढ़ने का नाम वीर्य-पारमिता है।
5. **ध्यान-पारमिता** : 'ध्यान' यानी किसी एक वस्तु में चित्त को एकाग्र करना। चित्त जब पूरी तरह वश में हो जाए, तो ध्यान-पारमिता सिद्ध होती है।
6. **प्रज्ञा-पारमिता** : 'प्रज्ञा' यानी सत्य का साक्षात्कार होना। चित्त जब निर्मल हो जाता है, तब प्रज्ञा की प्राप्ति होती है। निर्मल चित्त से ही सत्य के दर्शन होते हैं।

महायान के भिक्षु मानते थे कि हीनयान के दोषों और अंतर्विरोधों को दूर करने के लिए बुद्ध द्वारा उपदेशित अद्वैतवाद की पुनः स्थापना की जानी चाहिए। अद्वैतवाद का संबंध वेद और उपनिषदों से है। महायान के सर्वाधिक प्रचीन उपलब्ध ग्रंथ 'महायान वैपुल्य सूत्र' है, जिसमें प्रज्ञापारमिताएँ और सद्धर्मपुण्डरीक आदि अत्यंत प्राचीन हैं। इसमें 'शून्यवाद' का विस्तृत प्रतिपादन है।

हीनयान को थेरवाद, स्थिरवाद भी कहते हैं। तृतीय संगीति के बाद से ही भारत में इस संप्रदाय का लोप होने लगा था। थेरवाद की जगह सर्वास्तित्ववाद या वैभाषिक संप्रदाय ने जोर पकड़ा, जिसके ग्रंथ मूल संस्कृत में थे, लेकिन वे अब लुप्त हो चुके हैं, फिर भी चीनी भाषा में उक्त दर्शन के ग्रंथ सुरक्षित हैं। वैभाषिकों में कुछ मतभेद चले तो एक नई शाखा फूट पड़ी जिसे सौत्रांतिक मत कहा जाने लगा।

मैं बुद्ध बोल रहा हूँ

1. मनुष्य क्रोध को प्रेम से, पाप को सदाचार से, लोभ को दान से और झूठ को सत्य से जीत सकता है।
2. पुष्प की सुगंध वायु के विपरीत कभी नहीं जाती, लेकिन मानव के सद्गुण की महक सब ओर फैल जाती है।
3. हजार योद्धाओं पर विजय पाना आसान है, लेकिन जो अपने ऊपर विजय पाता है, वही सच्चा विजयी है।
4. सात सागरों में जल की अपेक्षा मानव के नेत्रों से कहीं अधिक आँसू बह चुके।
5. अभिलाषा सब दुःखों का मूल है।
6. जो नसीहत नहीं सुनता उसे लानत-मलामत सुनने का शौक होना चाहिए।
7. घृणा घृणा से कभी कम नहीं होती, प्रेम से ही होती है।
8. पाप का संचय ही दुःखों का मूल है।
9. जो अपने ऊपर विजय प्राप्त करता है वही सबसे बड़ा विजयी है।
10. हम जो कुछ भी हैं वह हमने आज तक क्या सोचा इस बात का परिणाम है। यदि कोई व्यक्ति बुरी सोच के साथ बोलता या काम करता है, तो उसे कष्ट ही मिलता है। यदि कोई व्यक्ति शुद्ध विचारों के साथ बोलता या काम करता है, तो उसकी परछाई की तरह खुशी उसका साथ कभी नहीं छोड़ती।
11. हजारों खोखले शब्दों से अच्छा वह एक शब्द है जो शांति लाए।
12. सभी बुरे कार्य मन के कारण उत्पन्न होते हैं, अगर मन परिवर्तित हो जाए तो क्या अनैतिक कार्य रह सकते हैं?
13. एक जग बूँद-बूँद कर के भरता है।
14. अतीत पर ध्यान मत दो, भविष्य के बारे में मत सोचो, अपने मन को वर्तमान क्षण पर केंद्रित करो।
15. स्वास्थ्य सबसे बड़ा उपहार है, संतोष सबसे बड़ा धन है, वफादारी सबसे बड़ा संबंध है।
16. जैसे मोमबत्ती बिना आग के नहीं जल सकती, मनुष्य भी आध्यात्मिक जीवन के बिना नहीं जी सकता।
17. तीन चीजें ज्यादा देर तक नहीं छुप सकती—सूरज, चंद्रमा और सत्य।

18. सत्पुरुष सर्वत्र (पाँचो स्कंधों में) छंदराग छोड़ देते हैं, संत जन कामभोगों के लिए बात नहीं चलाते, चाहे सुख मिले या दुःख, पंडित (जन) (अपने मन का) उतार-चढ़ाव प्रदर्शित नहीं करते।
19. तुम अपने क्रोध के लिए दंड नहीं पाओगे, तुम अपने क्रोध द्वारा दंड पाओगे।
20. किसी जंगली जानवर की अपेक्षा एक कपटी और दुष्ट मित्र से ज्यादा डरना चाहिए, जानवर तो बस आपके शरीर को नुकसान पहुँचा सकता है, पर एक बुरा मित्र आपकी बुद्धि को नुकसान पहुँचा सकता है।
21. आपके पास जो कुछ भी है, उसे बढ़ा-चढ़ाकर मत बताइए, और न ही दूसरों से ईर्ष्या कीजिए, जो दूसरों से ईर्ष्या करता है उसे मन की शांति नहीं मिलती।
22. वह जो पचास लोगों से प्रेम करता है उसके पचास संकट हैं, वह जो किसी से प्रेम नहीं करता उसके एक भी संकट नहीं है।
23. क्रोध को पाले रखना गरम कोयले को किसी और पर फेंकने की नीयत से पकड़े रहने के सामान है; इसमें आप ही जलते हैं।
24. चाहे आप जितने पवित्र शब्द पढ़ लें या बोल लें, वह आपका क्या भला करेंगे जब तक आप उन्हें उपयोग में नहीं लाते?
25. मैं कभी नहीं देखता कि क्या किया जा चुका है; मैं हमेशा देखता हूँ कि क्या किया जाना बाकी है।
26. बिना सेहत के जीवन जीवन नहीं है; बस पीड़ा की एक स्थिति है—मौत की छवि है।
27. हम जो सोचते हैं, वह बन जाते हैं।
28. शक की आदत से भयावह कुछ भी नहीं है, शक लोगों को अलग करता है। यह एक ऐसा जहर है, जो मित्रता खतम करता है और अच्छे रिश्तों को तोड़ता है। यह एक काँटा है जो चोटिल करता है, एक तलवार है जो वध करती है।
29. सत्य के मार्ग पर चलते हुए कोई दो ही गलतियाँ कर सकता है; पूरा रास्ता न तय करना, और इसकी शुरुआत ही न करना।
30. किसी विवाद में हम जैसे ही क्रोधित होते हैं हम सच का मार्ग छोड़ देते हैं, और अपने लिए प्रयास करने लगते हैं।
31. चार आर्य सत्य हैं : पहला यह कि दुःख है। दूसरा यह कि दुःख का कारण है। तीसरा यह कि दुःख का निदान है। चौथा यह कि वह मार्ग है जिससे दुःख का निदान होता है।
32. योग की अति अर्थात् तपस्या की अति से भी बचना जरूरी है। भोग की अति से चेतना के चीथड़े होकर विवेक लुप्त और संस्कार सुप्त हो जाते हैं। परिणामस्वरूप व्यक्ति के दिल-दिमाग की दहलीज पर विनाश डेरा डाल देता है। ठीक वैसे ही तपस्या की अति से देह दुर्बल और मनोबल कमजोर हो जाता है।

33. मैत्री के मोगरों की महक से ही संसार में सद्भाव का सौरभ फैल सकता है।
34. बैर से बैर कभी नहीं मिटता। अबैर से मैत्री से ही बैर मिटता है। मित्रता ही सनातन नियम है।
35. मनुष्य स्वयं ही अपना स्वामी है। भला दूसरा कोई उसका स्वामी कैसे हो सकता है? मनुष्य अपने आप ही अच्छी तरह से अपना दमन करके दुर्लभ स्वामित्व को, निर्वाण को प्राप्त कर सकता है।
36. मनुष्य स्वयं ही अपना स्वामी है। स्वयं ही वह अपनी गति है। इसलिए तुम अपने आपको संयम में रखो, जैसे घुड़सवार अपने सधे हुए घोड़े को अपने वश में रखता है।
37. सब अस्तित्व क्षणिक मात्र होते हैं। अतः प्राणियों में तथा इनसानों में अजन्म, अचल, अपरिवर्तनशील, अमर आत्मा नहीं होती। हर अस्तित्व में कोई स्वाभाविक शक्ति होती है, जो अपने जैसे ही एक अस्तित्व को जन्म देती है। इस तरह कोई भी अस्तित्व क्षणिक होने के बावजूद अपने परिणाम के रूप में बना रहता है। पूरी तरह से स्थायी और पूरी तरह से उच्छेद के बीच का यह मध्यम मार्ग है। हर अस्तित्व कारण के रूप में क्षण भर टिकने के बाद परिणाम के रूप में बना रहता है। कारण-परिणाम की यह शृंखला अनादि है और अनंत भी है।
38. ब्राह्मण न तो जटा से होता है, न गोत्र से और न जन्म से। जिसमें सत्य है, धर्म है और जो पवित्र है, वही ब्राह्मण है।
39. अरे मूर्ख! जटाओं से क्या? मृगचर्म पहनने से क्या? भीतर तो तेरा हृदय अंधकारमय है, काला है, ऊपर से क्या धोता है?
40. जो अकिंचन है, किसी तरह का परिग्रह नहीं रखता, जो त्यागी है, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
41. कमल के पत्ते पर जिस तरह पानी अलिप्त रहता है या आरे की नोक पर सरसों का दाना, उसी तरह जो आदमी भोगों से अलिप्त रहता है, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
42. चर या अचर, किसी प्राणी को जो दंड नहीं देता, न किसी को मारता है, न किसी को मारने की प्रेरणा देता है उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
43. ब्राह्मण मैं उसे कहता हूँ, जो अपरिग्रही है, जिसने समस्त बंधन काटकर फेंक दिए हैं, जो भय-विमुक्त हो गया है और संग तथा आसक्ति से विरत है।
44. जो बिना चित्त बिगाड़े, हनन और बंधन को सहन करता है, क्षमा-बल ही जिसका सेनानी है, मैं उसी को ब्राह्मण कहता हूँ।
45. जो अक्रोधी है, व्रती है, शीलवान है, बहुश्रुत है, संयमी और अंतिम शरीरवाला है, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
46. जन्म दुःख है, जरा दुःख है, व्याधि दुःख है, मृत्यु दुःख है, अप्रिय का मिलना दुःख है, प्रिय का बिछुड़ना दुःख है, इच्छित वस्तु का न मिलना दुःख है। यह दुःख नामक आर्य

- सत्य परिज्ञेय है। संक्षेप में रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान, यह पंचोपादान स्कंध (समुदाय) ही दुःख हैं।
47. तृष्णा पुनर्मुखादि दुःख का मूल कारण है। यह तृष्णा राग के साथ उत्पन्न हुई है। सांसारिक उपभोगों की तृष्णा, स्वर्गलोक में जाने की तृष्णा और आत्महत्या करके संसार से लुप्त हो जाने की तृष्णा, इन तीन तृष्णाओं से मनुष्य अनेक तरह का पापाचरण करता है और दुःख भोगता है। यह दुःख समुदाय का आर्य सत्य त्याज्य है।
48. तृष्णा का निरोध करने से निर्वाण की प्राप्ति होती है, देहदंड या कामोपभोग से मोक्षलाभ होने का नहीं। यह दुःख निरोध नाम का आर्य सत्य साक्षात्करणीय कर्तव्य है।
49. नरोधगामिनी प्रतिपद् नामक आर्य सत्य भावना करने योग्य है। इसी आर्य सत्य को अष्टांगिक मार्ग कहते हैं। वे अष्टांग ये हैं :—1. सम्यक् दृष्टि, 2. सम्यक् संकल्प, 3. सम्यक् वचन, 4. सम्यक् कर्मात्, 5. सम्यक् आजीव, 6. सम्यक् व्यायाम, 7. सम्यक् स्मृति और 8. सम्यक् समाधि। दुःख का निरोध इसी अष्टांगिक मार्ग पर चलने से होता है।
50. चित्त से ही जगत् की सत्ता है और जगत् की सत्ता चित्त है।
51. प्रमाद में मत फँसो। भोग-विलास में मत फँसो। कामदेव के चक्कर में मत फँसो। प्रमाद से दूर रहकर ध्यान में लगनेवाला व्यक्ति महासुख प्राप्त करता है।
52. प्रमाद न करने से, जागरूक रहने से अमृत का पद मिलता है, निर्वाण मिलता है। प्रमाद करने से आदमी बे-मौत मरता है। अप्रमादी नहीं मरते। प्रमादी तो जीते हुए भी मरे जैसे हैं।
53. कंजूस आदमी देवलोक में नहीं जाते। मूर्ख लोग दान की प्रशंसा नहीं करते। पंडित लोग दान का अनुमोदन करते हैं। दान से ही मनुष्य लोक-परलोक में सुखी होता है।
54. तृष्णा की नदियाँ मनुष्य को बहुत प्यारी और मनोहर लगती हैं। जो इनमें नहाकर सुख खोजते हैं, उन्हें बार-बार जन्म, मरण और बुढ़ापे के चक्कर में पड़ना पड़ता है।
55. लोहे का बंधन हो, लकड़ी का बंधन हो, रस्सी का बंधन हो, इसे बुद्धिमान लोग बंधन नहीं मानते। इनसे कड़ा बंधन तो सोने का, चाँदी का, मणि का, कुंडल का, पुत्र का, स्त्री का है।
56. गृहस्थ को चाहिए कि वह किसी प्राणी की हिंसा न करे, चोरी न करे, असत्य न बोले, शराब आदि मादक पदार्थों का सेवन न करे, व्यभिचार से बचे और रात्रि में असमय भोजन न करे।
57. गृहस्थ के कर्तव्य इस प्रकार हैं—

जिस आर्य श्रावक (गृहस्थ) को छह दिशाओं की पूजा करनी हो, वह चार कर्म-क्लेशों से मुक्त हो जाए। जिन चार कारणों के वश होकर मूढ़ मनुष्य पाप कर्म करने में प्रवृत्त होता है, उनमें से उसे किसी भी कारण के वश में नहीं होना चाहिए और संपत्ति-नाश के उसे छहों दरवाजे बंद कर देने चाहिए।

58. चित्त के मलीन होने से दुर्गति अनिवार्य है। चित्त के मल ये हैं, जिन्हें 'उपक्लेश' भी कहा जाता है :—

1. विषमलोभ, 2. द्रोह, 3. क्रोध, 4. पाखंड, 5. अमर्ष, 6. निष्ठुरता, 7. ईर्ष्या, 8. मात्सर्य, 9. ठगना, 10. शठता, 11. जड़ता, 12. हिंसा, 13. मान, 14. अतिमान, 15. मद और 16. प्रसाद।

59. मन ही सारी प्रवृत्तियों का अगुवा है। प्रवृत्तियों का आरंभ मन से ही होता है। वे मनोमय हैं। जब कोई आदमी दूषित मन से बोलता है या वैसा कोई काम करता है तो दुःख उसका पीछा उसी तरह करता है, जिस तरह बैलगाड़ी के पहिए बैल के पैरों का पीछा करते हैं।

60. मन ही सारी प्रवृत्तियों का अगुवा है। प्रवृत्तियाँ मन से ही आरंभ होती हैं। यदि मनुष्य शुद्ध मन से बोलता है या कोई काम करता है, तो सुख उसी तरह उसका पीछा करता है, जिस तरह मनुष्य के पीछे उसकी छाया।

61. सद्भाव से ही समाज निर्माण संभव है। जिससे एक व्यक्ति से दूसरे को अधिकाधिक हस्तांतरित होने पर श्रेष्ठ समाज की कल्पना को साकार किया जा सकता है।

62. जो आदमी शांत पद चाहता है, जो कल्याण करने में कुशल है, उसे चाहिए कि वह योग्य और परम सरल बने। उसकी बातें सुंदर, मीठी और नम्रता से भरी हों। उसे संतोषी होना चाहिए। उसका पोषण सहज होना चाहिए। कामों में उसे ज्यादा फँसा नहीं होना चाहिए। उसका जीवन सादा हो। उसकी इंद्रियाँ शांत हों। वह चतुर हो। वह ढीठ न हो। किसी कुल में उसकी आसक्ति नहीं होनी चाहिए।

63. वह ऐसा कोई छोटे से छोटा काम भी न करे, जिसके लिए दूसरे जानकार लोग उसे दोष दें। उसके मन में ऐसी भावना होनी चाहिए कि सब प्राणी सुखी हों, सबका कल्याण हो, सभी अच्छी तरह रहें।

64. कोई किसी को न ठगे। कोई किसी का अपमान न करे। वैर या विरोध से एक-दूसरे के दुःख की इच्छा न करें।

65. माता जैसे अपनी जान की परवाह न कर अपने इकलौते बेटे की रक्षा करती है, उसी तरह मनुष्य सभी प्राणियों के प्रति असीम प्रेमभाव बढ़ाए।

66. खड़ा हो चाहे चलता हो, बैठा हो चाहे लेटा हो, जब तक मनुष्य जागता है, तब तक उसे ऐसी ही स्मृति बनाए रखनी चाहिए। इसी का नाम ब्रह्म-विहार है।

67. ऐसा मनुष्य किसी मिथ्या दृष्टि में नहीं पड़ता। शीलवान व शुद्ध दर्शनवाला होकर वह काम, तृष्णा का नाश कर डालता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता।
68. जैसे कच्ची छत में जल भरता है, वैसे ही अज्ञानी के मन में कामनाएँ जमा होती हैं।
69. सारे संस्कार अनित्य हैं अर्थात् जो कुछ उत्पन्न होता है वह नष्ट भी होता है इस सच्चाई को जब कोई विपश्यना प्रज्ञा से देख लेता है तो उसको दुःखों का निर्वेद प्राप्त होता है अर्थात् दुःख क्षेत्र के प्रति भोक्ता भाव टूट जाता है।
70. मन सभी धर्मों का अगुआ है, मन ही प्रधान है, सभी धर्म मनोमय हैं, जब कोई व्यक्ति अपने मन को मैला करके कोई वाणी बोलता है अथवा शरीर से कोई कर्म करता है तब सुख उसके पीछे हो लेता है, जैसे कभी न छोड़नेवाली छाया संग-संग चलने लगती है।
71. मुझे कोसा, मुझे मारा, मुझे हराया, मुझे लूटा—जो मन में ऐसी गॉंठें नहीं बाँधते रहते हैं उनका बैर शांत हो जाता है।
72. अनाड़ी लोग नहीं जानते कि हम यहाँ इस संसार से जानेवाले हैं, जो इसे जान जाते हैं उनके झगड़े शांत हो जाते हैं।
73. अच्छी लगनेवाली चीजों को शुभ-शुभ देखते विहार करनेवाले इंद्रियों में असंयत, भोजन की मात्रा के अज्ञानकार, आलसी और उद्योगहीन को मार ऐसे सताती है जैसे दुर्बल को मारत।
74. अशुभ को अशुभ जानकर साधना करनेवाले इंद्रियों में सुसंयत, भोजन की मात्रा के जानकार, श्रद्धावान और उद्योगरत को मार उसी प्रकार नहीं डिगा सकता जैसे कि वायु शैल पर्वत को।
75. जिसने कषायों का परित्याग कर कषाय वस्त्र धारण किए हुए हैं वह संयम और सत्य से परे है, वह कषाय वस्त्र धारण करने का अधिकारी नहीं है।
76. जिसने कषायों को परित्याग किया है वह शीलों में प्रतिष्ठित है, संयम और सत्य से युक्त है, वह कषाय वस्त्र धारण करने का अधिकारी है।
77. जो निसार को सार और सार को निसार समझते हैं, ऐसे गलत चिंतन में लगे हुए व्यक्तियों को सार प्राप्त नहीं होता।
78. सार को सार और निसार को निसार जानकर शुद्ध चिंतनवाले व्यक्ति सार को प्राप्त कर लेते हैं।
79. जैसे बुरी तरह छाए हुए घर में वर्षा का पानी घुस जाता है, वैसे ही अभावित चित में राग घुस जाता है।
80. जैसे अच्छी तरह छाए हुए घर में वर्षा का पानी नहीं घुस पाता है, वैसे ही भावित (शमथ और विपश्यना) चित में राग नहीं घुस पाता है।

81. यहाँ (इस लोक में) शोक करनेवाला, पाप करनेवाला (व्यक्ति) दोनों जगह शोक करता है। वह अपने कर्मों की मलिनता देखकर शोकापन्न होता है, संतापित होता है।
82. जो यहाँ (इस लोक में) प्रसन्न होता है, वह मृत्यु के बाद भी प्रसन्न होता है, पुण्य करनेवाला (व्यक्ति) दोनों जगह प्रसन्न होता है। वह अपने कर्मों की शुद्धता देखकर मुदित होता है, प्रमुदित होता है।
83. जो यहाँ (इस लोक में) संतप्त होता है, प्राण छोड़कर (परलोक में) संतप्त होता है, पापकारी दोनों जगह संतप्त होता है, मैंने पाप किया है—इस (चिंतन) से संतप्त होता है (और) दुर्गति को प्राप्त होकर और भी (अधिक) संतप्त होता है।
84. जो यहाँ (इस लोक में) आनंदित होता है, प्राण छोड़कर (परलोक में) आनंदित होता है, पुण्यकारी दोनों जगह आनंदित होता है, मैंने पुण्य किया है—इस (चिंतन) से आनंदित होता है (और) सुगति को प्राप्त होकर और भी (अधिक) आनंदित होता है।
85. धर्मग्रंथों (त्रिपिटक) का कितना ही पाठ करें, लेकिन यदि प्रमाद के कारण मनुष्य उन धर्मग्रंथों के अनुसार आचरण नहीं करता तो दूसरों की गायों को गिननेवाले ग्वालों की तरह वह श्रमणत्व का भागी नहीं होता।
86. धर्मग्रंथों (त्रिपिटक) का भले थोड़ा ही पाठ करें, लेकिन यदि वह (व्यक्ति) धर्म के अनुकूल आचरण करनेवाला होता है, तो राग, द्वेष और मोह को त्यागकर, समप्रज्ञानी बन, भली प्रकार विमुक्त चितवाला होकर इहलोक अथवा परलोक में कुछ आसक्ति न करता हुआ श्रमणत्व का भागी हो जाता है।
87. प्रमाद न करना अमृत (निर्वाण) का पद है और मृत्यु का प्रमाद न करनेवाले (कभी) मरते नहीं, जबकि मृत्यु प्रमादी (तो) मरे सामान होते हैं।
88. ज्ञानीजन अप्रमाद के बारे में इस प्रकार विशेष रूप से जानकर आर्यों की गोचर भूमि में रमण करते हुए अप्रमाद में प्रमुदित होते हैं।
89. सतत ध्यान करनेवाले, नित्य दृढ़ पराक्रम करनेवाले, धीर पुरुष उत्कृष्ट योगक्षेमवाले निर्वाण को प्राप्त (अर्थात्, इसका साक्षात्कार) कर लेते हैं।
90. उद्योगशील, स्मृतिमान, शुची (दोषरहित) कर्म करनेवाले, सोच-समझकर काम करनेवाले, संयमी, धर्म का जीवन जीनेवाले, अप्रमत्त (व्यक्ति) का यश खूब बढ़ता है।
91. मेधावी (पुरुष) उद्योग, अप्रमाद, संयम तथा (इंद्रियों के) दमन द्वारा (अपने लिए) ऐसा द्वीप बना ले जिसे (चार प्रकार के क्लेशों की) बाढ़ आप्लावित न कर सके।
92. मूर्ख, दुर्बुद्धि जन प्रमाद में लगे रहते हैं, (जबकि) मेधावी श्रेष्ठ धन के समान अप्रमाद की रक्षा करता है।
93. प्रमाद मत करो और न ही कामभोगों में लिप्त होओ, क्योंकि अप्रमादी ध्यान करते हुए महान् (निर्वाण) सुख पा लेता है।

94. जब कोई समझदार व्यक्ति प्रमाद को अप्रमाद से परे धकेल देता है (अर्थात् जीत लेता है) तब वह प्रज्ञारूपी प्रासाद पर चढ़ा हुआ शोकरहित हो जाता है, (ऐसा) शोकरहित धीर (मनुष्य) शोकग्रस्त (विमूढ़ों) जनों को ऐसे ही (करुण भाव से) देखता है जैसे की पर्वत पर खड़ा हुआ (कोई व्यक्ति) धरती पर खड़े लोगों को देखे।
95. प्रमाद करनेवालों में अप्रमादी (क्षीणाश्रव) तथा (अज्ञान की नींद में) सोए लोगों में (प्रज्ञा में) अतिसचेत उत्तम प्रज्ञावाला (दूसरों को) पीछे छोड़कर (ऐसे आगे निकल जाता है) जैसे शीघ्रगामी अश्व दुर्बल अश्व को।
96. अप्रमाद के कारण इंद्र देवताओं में श्रेष्ठता को प्राप्त हुए पंडित जन अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं, इसलिए प्रमाद की सदा निंदा होती है।
97. जो साधक अप्रमाद में रत रहता है या प्रमाद में भय देखता है, वह अपने छोटे-बड़े सभी कर्म-संस्कारों के बंधनों को आग की भाँति जलाते हुए चलता है।
98. जो साधक अप्रमाद में रत रहता है या प्रमाद में भय देखता है, उसका पतन नहीं हो सकता, वह तो निर्वाण के समीप पहुँचा हुआ होता है।
99. चंचल, चपल, कठिनाइयों से संरक्षण और कठिनाई से ही निवारण योग्य चित्त को मेधावी पुरुष वैसे ही सीधा करता है जैसे बाण बनानेवाला बाण को।
100. जैसे जल से निकलकर धरती पर फेंकी गई मछली तड़पती है, वैसे ही मार के फंदे से निकलने के लिए ये चित्त तड़पता है।
101. ऐसे चित्त का दमन करना अच्छा है जिसको वश में करना कठिन है, जो शीघ्रगामी है और यहाँ से वहाँ चला जाता है दमन किया गया चित्त सुख देनेवाला होता है।
102. जो बड़ा दुर्दश है कठिनाई से दिखाई पड़नेवाला है, बड़ा चालक है, जहाँ चाहे वहीं पहुँचता है, समझदार व्यक्ति को चाहिए कि ऐसे चित्त की रक्षा करे। सुरक्षित चित्त बड़ा सुखदायी होता है।
103. जो कोई पुरुष, स्त्री, गृहस्थ और प्रवर्जित दूरगामी, अकेला विचरनेवाले, शरीररहित, गुहशायी चित्त को संयमित करेंगे, वे मार के बंधन से मुक्त हो जाएँगे।
104. जिसका चित्त अस्थिर है, जो सधर्म को नहीं जानता, जिसकी श्रद्धा डावाँडोल है, उसकी प्रज्ञा परिपूर्ण नहीं हो सकती।
105. जिसके चित्त में राग नहीं, जिसका चित्त द्वेष से रहित है, जो पाप-पुण्य विहीन है, उसे सजग रहनेवाले (क्षीणाश्रव) को कोई भय नहीं होता।
106. इस शरीर को घड़े के समान भंगुर जानकर, और इस चित्त को गढ़ के समान रक्षित और दृढ़ बना, प्रज्ञारूपी शस्त्र के साथ मार से युद्ध करे उसे जीत लेने पर भी चित्त की रक्षा करें और अनासक्त बने रहें।
107. अहो! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतनारहित होकर निरर्थक काठ के टुकड़े की भाँति पृथ्वी पर पड़ा रहेगा।

108. शत्रु शत्रु की अथवा बैरी बैरी की जितनी हानि करता है, कुमार्ग पर लगा हुआ चित्त इससे कहीं अधिक हानि करता है।
109. जितनी (भलाई) न माता-पिता कर सकते हैं, न दूसरे भाई-बंधु, उससे कहीं अधिक भलाई सन्मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।
110. कौन है जो इस आत्मभाव अथवा अपनत्वरूपी पृथ्वी और देवताओं सहित इस यमलोक को बींधकर इनका साक्षात्कार कर लेगा? कौन कुशल व्यक्ति भली प्रकार उपदिष्ट धर्म के पदों का पुष्प की भाँति चयन करते हुए इनको भी बींध कर इनका साक्षात्कार कर पाएगा?
111. निर्वाण की खोज में लगा हुआ व्यक्ति ही पृथ्वी पर और देवताओं सहित इस यमलोक पर विजय पाएगा। निर्वाण ही भली प्रकार उपदिष्ट धर्म के पदों का पुष्प की भाँति चयन करेगा।
112. इस शरीर को फेन (झाग) के समान या मरू मरीचिका के समान निसार जानकर मार के फंदों को काटकर मृत्युराज की दृष्टि से ओझल रहे।
113. कामभोगरूपी पुष्पों को चुननेवाले आसक्तियों में डूबे हुए मनुष्य को मृत्यु वैसे ही पकड़कर ले जाती है जैसे सोए हुए गाँव को नदी की बड़ी बाढ़ बहा ले जाती है।
114. कामभोगरूपी पुष्पों को चुननेवाले, आसक्तियों में डूबे हुए मनुष्य को जो अभी तक कामनाओं से तृप्त नहीं हुआ है, यमराज अपने वश में कर लेता है।
115. जैसे भ्रमर फूल के वर्ण और गंध को क्षति पहुँचाए बिना रस को लेकर चल देता है, वैसे ही गाँव में मुनि भिक्षाटन करे।
116. दूसरों के मर्मवेधकवचनों पर ध्यान न देकर, न दूसरों के कृत-अकृत को देखें, इसके बदले अपने ही कृत-अकृत को देखें।
117. जैसे कोई पुष्प सुंदर और वर्णयुक्त होने पर भी गंधरहित हो, वैसे ही अच्छी कही हुई बुद्धवाणी फलरहित होती है। यदि कोई तदनुसार आचरण न करें।
118. जैसे कोई व्यक्ति पुष्प राशि से बहुत सी मालाएँ बनाएँ, ऐसे ही उत्पन्न हर प्राणियों को बहुत से अच्छे कर्म (पुण्य) करना चाहिए।
119. चंदन, तगर, कमल अथवा जूही—इन (सभी) की सुगंधें शील-सदाचार की सुगंध से बढ़-चढ़कर है।
120. तगर और चंदन की गंध, उत्पल (कमल) और चमेली की गंध—इन भिन्न-भिन्न सुगंधियों से शील की गंध अधिक श्रेष्ठ है।
121. तगर और चंदन की जो यह गंध फैलती है, वह अल्पमात्र है, और जो यह शीलवानों की गंध है, वह उत्तम गंध देवताओं में फैलती है।
122. जो शीलसंपन्न है, प्रमाद रहित होकर विहार करते हैं, यथार्थ ज्ञान द्वारा मुक्त हो चुके हैं उनके मार्ग को मौत नहीं देख पाती।

123. जिस प्रकार महापथ पर फेंके गए कचरे के ढेर में पवित्र गंधवाला मनोरम पदम् उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार कचरे के समान भगवान् बुद्ध का श्रावक भी अपनी प्रज्ञा से अंधे पृथग्जनों के बीच अत्यंत शोभायमान होता है।
124. जागनेवाले की रात लंबी हो जाती है, थके हुए का योजन लंबा हो जाता है, सधर्म को न जाननेवाले मूर्ख व्यक्तियों के लिए संसार चक्र लंबा हो जाता है।
125. यदि विचरण करते हुए शील, समाधि, प्रज्ञा में अपने से श्रेष्ठ या अपने सदृश्य सहचर न मिले, तो दृढ़ता के साथ अकेले ही विचरण करें। मूर्ख व्यक्ति से सहायता नहीं मिल सकती।
126. 'मेरे पुत्र!' 'मेरा धन'—इस मिथ्या चिंतन में ही मूढ़ व्यक्ति व्याकुल बना रहता है, अरे, जब यह तन और मन का अपनापा नहीं है, तो कहाँ 'मेरे पुत्र'? कहाँ 'मेरा धन'?
127. जो मूढ़ होकर अपनी मूढ़ता को स्वीकारता है, वह इस अंश में पंडित ज्ञानी है जो मूढ़ होकर अपने आपको पंडित मानता है, वह मूढ़ ही कहा जाता है।
128. चाहे मूढ़ व्यक्ति जीवन भर पंडित की सेवा में रहे, वह धर्म को वैसे ही नहीं जान पाता जैसे कलुची सूप के रस को।
129. चाहे विज्ञ पुरुष मुहूर्त भर ही पंडित की सेवा में रहे, वह शीघ्र ही धर्म को वैसे जान लेता है जैसे जिह्वा सूप के रस को।
130. बाल-बुद्धिवाले मूर्ख जन अपने ही शत्रु बनकर आचरण करते हैं और ऐसे पाप कर्म करते हैं, जिनका फल स्वयं उनके अपने लिए ही कड़ुवा होता है।
131. और वह किया हुआ कर्म ठीक होता है जिसे करके पीछे पछताना न पड़े, और जिसके फल को प्रसन्न चित्त होकर अच्छे मन से भोगा जा सके।
132. जब तक पाप का फल नहीं आता तब तक मूढ़ व्यक्ति उसे मधु के समान मधुर मानता है, और जब पाप का फल आता है तब वह मूढ़ दुःखी होता है।
133. चाहे मूढ़ व्यक्ति महीने-महीने के अंतराल पर केवल कुश की नोक से भोजन करे, तो भी वह धर्मवेत्ताओं की कुशल चेतना के सोलहवें भाग की बराबरी भी नहीं कर सकता।
134. जैसे ताजा दूध शीघ्र नहीं जमता, उसी तरह किया गया पाप कर्म शीघ्र अपना फल नहीं दिखाता, बल्कि राख से ढँकी आग की तरह जलता हुआ वह मूर्ख का पीछा करता है।
135. मूढ़ का जितना भी ज्ञान है वह उसके अनिष्ट के लिए होता है, वह उसकी मूर्धा (सिर-प्रज्ञा) को गिराकर उसके कुशल कर्मों का नाश कर डालता है।
136. जो मूढ़ व्यक्ति नहीं है उसकी संभावना जगाता है, भिक्षुओं में अग्रणी बनना चाहता है, संघ के आवासों-विहारों के स्वामित्व चाहता है और पराए कुलों में आदर-सत्कार की कामना करता है।

137. गृहस्थ और प्रवर्जित दोनों मेरा ही किया माने, किसी भी कृत्य-अकृत्य में मेरे ही वशवर्ती रहें—ऐसा मूढ़ व्यक्ति का संकल्प होता है, इससे उसकी इच्छा और अभिमान का संवर्धन होता है।
138. लाभ का मार्ग दूसरा है और निर्वाण की और जानेवाला दूसरा, इस प्रकार इसे भली प्रकार जानकर बुद्ध का श्रावक भिक्षु (आदर)-सत्कार की इच्छा न करे और (त्रिविध) विवेक (अर्थात् काय विवेक, चित्त विवेक, विक्खांभन विवेक) को बढ़ावा दे।
139. जो व्यक्ति अपना दोष दिखानेवाले को भूमि में छिपी संपदा दिखानेवाले की तरह समझे, जो संयम बात करनेवाले मेधावी पंडित की संगति करे, उस व्यक्ति का मंगल ही होता है, अमंगल नहीं।
140. जो उपदेश दे, अनुशासन करे, अनुचित कार्य से रोके, वह सत्पुरुषों का प्रिय होता है और असत्यपुरुषों का अप्रिय।
141. न पापी मित्रों की संगत करें, न अधम पुरुषों की, संगति करें कल्याण मित्रों की, उत्तम पुरुषों की।
142. बुद्ध के उपदेशित धर्म में सदा पंडित रमण करता है, नवविध लोकोत्तर धर्म रस का पान करनेवाला विशुद्ध रत हो सुखपूर्वक विहार करता है।
143. पानी ले जानेवाले जिधर चाहते हैं उधर ही से पानी को ले जाते हैं, बाण को तपाकर सीधा करते हैं, बड़ई लकड़ी को अपनी रुचि के अनुसार सीधा या बाँका करते हैं, और पंडित जन अपना ही दमन करते हैं।
144. जैसे सघन शैल पर्वत वायु से प्रकंपित नहीं होता, वैसे ही समझदार लोग निंदा और प्रशंसा वस्तुतः आठों लोक धर्मों से विचलित नहीं होते।
145. विभिन्न धर्मों को सुनकर पंडितजन गहरे, स्वच्छ, निर्मल सरोवर के समान अत्यंत प्रसन्न (संतुष्ट) होते हैं।
146. जो अपने लिए या दूसरे के लिए पुत्र, धन अथवा राज्य की कामना नहीं करता और न अधर्म से अपनी उन्नति चाहता है, वह शीलवान, प्रज्ञावान और धार्मिक होता है।
147. मनुष्यों में भवसागर से पर जानेवाले विरले ही लोग होते हैं, ये दूसरे लोग तो सत्काय दृष्टिरूपी तट पर दौड़नेवाले होते हैं।
148. जो लोग सम्यक् प्रकार से आख्यात धर्म का अनुवर्तन करते रहे हैं, वे अति दुस्तर मृत्यु क्षेत्र के पार चले जाएँगे।
149. पंडित कृष्ण धर्म को त्यागकर शुक्ल (धर्म) की भावना करे, अर्थात्, पापकर्म को छोड़कर शुभ कर्म करे, वह घर से बेघर होकर सामान्य व्यक्ति की तरह आकर्षण रहित एकांत का सेवन करे।
150. कामनाओं को त्यागकर अकिंचन बना हुआ व्यक्ति उसी अवस्था में रमण करने की इच्छा करे, समझदार व्यक्ति पाँच नीवरणरूपी चित्त मलों से अपने आपको परिशुद्ध

करे।

151. संबोधि के अंगों में जिनका चित्त सम्यक् प्रकार से अभ्यस्त हो गया है, जो परिग्रह का त्यागकर अपरिग्रह में रत है, चित्त मलों से रहित ऐसे द्युतिमान (पुरुष) लोक में निर्वाण प्राप्त है।
152. जिसकी यात्रा पूरी हो गई है, जो शोकरहित है, सर्वथा विमुक्त है, जिसकी सभी ग्रंथियाँ कट गई हैं, उसके लिए (कायिक और चेतसिक) संताप नाम की कोई चीज नहीं है।
153. स्मृतिमान उद्योग करते रहते हैं, वे घर में रमण नहीं करते, जैसे हंस क्षुद्र जलाशय को छोड़कर चले जाते हैं, वैसे ही वे घर-बार अथवा सभी ठौर-ठिकानों को छोड़ देते हैं।
154. जो कर्मों और प्रत्ययों का संचय नहीं करते, जिन्हें अपने आहार की मात्रा का पूरा-पूरा ज्ञान है, शून्यता स्वरूप तथा निमित्तरहित निर्वाण जिनकी गोचर भूमि है, उनकी गति वैसे ही अज्ञेय रहती है जैसे आकाश में पक्षियों की गति।
155. सारथि द्वारा सुदांत (सुशिक्षित) घोड़ों के समान जिसकी इंद्रियाँ शांत हो गई हैं, जिसका अभिमान विगलित हो गया है, जो आश्रवरहित है, देवगण भी वैसे (व्यक्ति) से ईर्ष्या करते हैं।
156. सुंदर व्रतधारी व्यक्ति जो पृथ्वी के समान क्षुब्ध नहीं होता, वैसे व्यक्ति के हृदय में कमलदल रहित जलाशय के समान संसार की क्षुद्र वृत्तियाँ नहीं होतीं।
157. सम्यक् ज्ञान द्वारा मुक्त हुए अरहंत का मन शांत हो जाता है और वाणी तथा कर्म भी शांत हो जाते हैं।
158. जो नर अंधश्रद्धा रहित, निर्वाण का जानकार (भाव-संसरण की) संधि का छेदन किए हुए, पुनर्जन्म की संभावना रहित और सर्वप्रकार की आशाएँ त्यागे हुए हो, वह निस्संदेह उत्तम पुरुष होता है।
159. गाँव हो या जंगल, भूमि नीची हो या ऊँची, जहाँ कहीं अरहंत विहार करते हैं, वह भूमि रमणीय होती है।
160. रमणीय वन जहाँ (सामान्य) व्यक्ति रमण नहीं करते, (वहाँ) वीतराग रमण करेंगे, क्योंकि वे कामभोगों की खोज में नहीं रहते।
161. निरर्थक पदों से युक्त हजार वचनों की अपेक्षा एक अकेला सार्थक श्रेयस्कर होता है, जिसे सुनकर कोई व्यक्ति रोगादि के उपशमन से शांत हो जाता है।
162. ...जो कोई निरर्थक पदों से युक्त सी गाथाएँ बोले उसकी अपेक्षा एक अकेला सार्थक धर्मपद श्रेयस्कर होता है, जिसे सुनकर (कोई व्यक्ति) शांत हो जाता है।
163. हजारों हजार मनुष्यों को संग्राम में जीतनेवाले से भी अपने आपको जीतनेवाला कहीं उत्तम संग्राम विजेता होता है।

164. इन अन्य लोगों को द्युत, धन हरण, संग्राम अथवा बल द्वारा जीतने की अपेक्षा अपने आपको जीतना ही श्रेयस्कर है।
165. जिस व्यक्ति ने स्वयं को दाँत की भाँति खुद को संयमित बना लिया हो उस प्रकार के व्यक्ति की जीत को न तो देव, न गंधर्व और न ही ब्रह्मा पराजय में बदल सकते हैं।
166. जो कोई सौ वर्षों तक महीने-महीने हजार रुपए से यज्ञ करे और किसी व्यक्ति की मुहूर्त भर पूजा कर ले तो सौ वर्षों के हवन से वह मुहूर्त भर की पूजा ही श्रेयस्कर होती है।
167. पुण्य की इच्छा से जो कोई संसार में वर्ष भर यज्ञ-हवन करे, तो भी वह सरल चित्त व्यक्तियों को किए जानेवाले अभिवादन के चतुर्थांश के बराबर भी नहीं होता।
168. जो अभिवादनशील है और नित्य बड़े-बूढ़ों की सेवा करता है, उसकी ये चार बातें बढ़ती हैं—आयु, वर्ण, सुख और बल।
169. दुशील और चित्त की एकाग्रता से रहित व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवन से शीलवान और ध्यानी व्यक्ति का एक दिन का जीवन श्रेयस्कर होता है।
170. आलसी और उद्योगरहित व्यक्ति के सौ वर्ष जीवन से दृढ़ उद्योग करनेवाले व्यक्ति का एक दिन का जीवन श्रेयस्कर होता है।
171. आय-व्यय को न देखनेवाले व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवन से आय-व्यय को देखनेवाले व्यक्ति का एक दिन का जीवन श्रेयस्कर होता है।
172. उत्तम धर्म को न देखनेवाले व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवन से उत्तम धर्म को देखनेवाले व्यक्ति का एक दिन का जीवन श्रेयस्कर होता है।
173. पुण्य कर्म करने में जल्दी करें, पाप कर्म से चित्त को हटाएँ, क्योंकि धीमी गति से पुण्य कर्म करनेवाले का मन पाप कर्म में लीन होने लगता है।
174. यदि पुरुष कभी पाप कर्म कर डाले तो उसे बार-बार और न करे, वह उसमें रुचि न ले, क्योंकि पाप कर्मों का संचय दुःख का कारण होता है।
175. पापी भी पाप को तब तक अच्छा समझता है, जब तक पाप का विपाक नहीं होता और जब पाप का विपाक होता है तब पापी पापों को देखने लगता है।
176. 'मेरे पास नहीं आएगा'—(ऐसा सोचकर) पाप की अवहेलना न करें। बूँद-बूँद पानी गिरने से घड़ा भर जाता है ऐसे ही थोड़ा-थोड़ा संचय करता हुआ मूढ़ व्यक्ति भी पाप से भर जाता है।
177. जैसे छोटे काफिले परंतु विपुल धनवाले व्यापारी भयमुक्त मार्ग को अथवा जीवित रहनेवाला व्यक्ति विष को छोड़ देता है वैसे ही मनुष्य पापों को छोड़ दे।
178. यदि हाथ में घाव न हो तो हाथ में विष को लिया जा सकता है, क्योंकि घावरहित शरीर में विष नहीं चढ़ता है, ऐसे ही पापकर्म न करनेवाले को पाप नहीं लगता।

179. जो निरपराध, निर्मल, दोषरहित व्यक्ति पर दोषारोपण करता है, उस दोष लगानेवाले मूर्ख को ही पाप लगता है जैसे कि पवन कि उलटी दिशा में फेंकी गई महीन धूल फेंकनेवाले पर ही आ गिरती है।
180. कई मनुष्य गर्भ से उत्पन्न होते हैं, पर पापकर्मी नरक में जाते हैं, सुगतिवाले स्वर्ग में जाते हैं, और चित्त मलरहित निर्वाण लाभ करते हैं।
181. न अनंत आकाश में, न समुद्र की गहराइयों में, न पर्वतों की कंदराओं में प्रवेश करके इस जगत् में, कहीं भी तो ऐसा स्थान नहीं है जहाँ ठहरा हुआ कोई पाप कर्मों को भोगने से बच सके।
182. सभी दंड से डरते हैं, सभी को मृत्यु से डर लगता है, अतः सभी को अपने जैसा समझकर न किसी की हत्या करे, न हत्या करने के लिए प्रेरित करे।
183. जो सुख चाहनेवाले प्राणियों को अपने सुख की चाह से, दंड देकर कष्ट पहुँचता है, वह मरकर सुख नहीं पाता।
184. तुम किसी को कठोर वचन मत बोलो, बोलने पर दूसरे भी तुम्हें वैसे भी बोलेंगे, क्रोध या विवाद भरी वाणी दुःख है, उसके बदले में तुम्हें दंड मिलेगा।
185. यदि तुम अपने आपको टूटे हुए काँसे के समान निःशब्द कर लो, तो समझो तुमने निर्वाण पा लिया, क्योंकि तुममें कोई विवाद नहीं रह गया, कोई प्रतिवाद नहीं रह गया।
186. जैसे ग्वाला लाठी से गायों को चारागाह में हाँककर ले जाता है वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों की आयु हाँककर ले जाते हैं।
187. बाल बुद्धिवाला मूर्ख व्यक्ति पापकर्म करते हुए होश नहीं रखता, लेकिन समय पाकर अपने उन्हीं कर्मों के कारण वह दुर्मेध ऐसे तपता है जैसे आग से जला हो।
188. जो दंड रहितों को दंड से पीड़ित करता है या निर्दोषों को दोष लगाता है, उसे इन दस बातों में से कोई एक बात शीघ्र ही होती है—(1) तीव्र वेदना, (2) हानि, (3) अंग भंग, (4) बड़ा रोग, (5) उन्माद, (6) राज दंड, (7) कड़ी निंदा, (8) संबंधियों का विनाश, (9) भोगों का क्षय अथवा इसके घर को आग जला डालती है, शरीर छूटने पर वह दुष्प्रज्ञ नरक में उत्पन्न होता है।
189. जिस मनुष्य के संदेह समाप्त नहीं हुए हैं उसकी शुद्धि न रहने से, न जटा धारण करने से, न कीचड़ लपेटने से, न उपवास करने से, न कड़ी भूमि पर सोने से और न उकड़ू बैठने से ही होती है।
190. वस्त्र आभूषण आदि से अलंकृत रहते हुए भी यदि कोई शांत, स्थिर नियंत्रित ब्रह्मचारी है तथा सारे प्राणियों के प्रति दंड त्यागकर समता का आचरण करता है, तो वह ब्राह्मण है, श्रमण है, भिक्षु है।

191. संसार में कोई-कोई पुरुष ऐसा भी होता है जो स्वयं ही लज्जा के मारे कर्म नहीं करता, वह निंदा को नहीं सह सकता, जैसे साधा हुआ घोड़ा चाबुक को नहीं सह सकता।
192. चाबुक खाए उत्तम घोड़े के समान उद्योगशील और संवेगशील बनो, श्रद्धा, शील, वीर्य, समाधि और धर्म—विनिश्चय से युक्त हो विद्या और आचरण से संपन्न और स्मृतिमान बन इस महान् दुःख समूह का अंत कर सकोगे।
193. पानी ले जानेवाले जिधर चाहते हैं उधर ही पानी को ले जाते हैं, बाण बनानेवाले बाण को तपाकर सीधा करते हैं, बढ़ई लकड़ी को अपनी रुचि के अनुसार सीधा या बाँका करते हैं और सदाचार-परायण अपना ही दमन करते हैं।
194. जहाँ प्रतिक्षण सबकुछ जल ही रहा हो, वहाँ कैसी हँसी? कैसा आनंद? कैसा आमोद? कैसा प्रमोद? ऐ अविद्यारूपी अंधकार से घिरे हुए भोले लोगों तुम ज्ञानरूपी प्रकाश-प्रदीप की खोज क्यों नहीं करते?
195. देखो इस चित्रित शरीर को जो व्रणों से युक्त, फूला हुआ, रोगी और नाना प्रकार के संकल्पों से युक्त है और जो सदा बना रहनेवाला नहीं है।
196. वह शरीर जीर्ण-शीर्ण, रोग का घर और नितांत भंगुर है, सड़ांध से भरी हुई यह देह टुकड़े-टुकड़े हो जाती है जीवन मरणांतक जो ठहरा।
197. शरद काल की फेंकी गई अपथ्य लौकी के समान कुम्हलाए मृत शरीर को देखकर या कबूतरों के वर्णवाली श्मशान में पड़ी हड्डियों को देखकर किसको इस देह से अनुराग होगा?
198. यह हड्डियों का नगर बना है जो मांस और रक्त से लेप गया है, जिसमें जरा, मृत्यु, अभिमान और डाह छिपे हुए हैं।
199. रंग-बिरंगे सुचित्रित राजरथ जीर्ण हो जाते हैं और यह शरीर भी जीर्णता को प्राप्त हो जाता है, परंतु संतों का धर्म जीर्ण नहीं होता, तरोताजा बना रहता है, संतजन संतों से ऐसा ही कहते हैं।
200. अज्ञानी पुरुष बैल के समान जीर्ण होता है, उसका मांस बढ़ता है प्रज्ञा नहीं।
201. इस कायारूपी घर को बनानेवाले की खोज में मैं बिना रुके अनेक जन्मों तक यहाँ-वहाँ भ्रमण करता रहा, किंतु बार-बार दुःखमय जन्म ही हाथ लगे।
202. ऐ घर बनानेवाले, अब तुझे देख लिया गया है, अब फिर तू नया घर नहीं बना सकता! तेरी साड़ी कड़ियाँ टूट गई हैं और घर का शिखर भी विशृंखलित हो गया है, चित्त पूरी तरह संस्काररहित हो गया है और तृष्णाओं का क्षय हो गया है।
203. ब्रह्मचर्य का पालन किए बिना अथवा यौवन में धन कमाए बिना लोग वृद्धावस्था में मत्स्यहीन जलाशय में जीर्ण करोंच पक्षी के समान घुट-घुटकर मरते हैं।

204. ब्रह्मचर्य का पालन किए बिना अथवा यौवन में धन कमाए बिना लोग वृद्धावस्था में धनुष से छोड़े गए बाण की भाँति पुरानी बातों को याद कर अनुताप करते हुए बिलखते हुए सोते हैं।
205. यदि अपने को प्रिय समझते हो तो उसको सुरक्षित रखो, समझदार व्यक्ति जीवन की तीनों अवस्थाओं (युवास्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था) में से किसी एक में तो अवश्य सचेत हो।
206. पहले अपने आपको ही उचित कार्य में लगाएँ, फिर किसी दूसरे को उपदेश करें, तो पंडित क्लेश को प्राप्त नहीं होगा।
207. यदि पहले अपने को वैसा बनाएँ जैसा कि दूसरों को उपदेश देना है, तो अपने आपको शांत करनेवाला तथा भली-भाँति वश में करनेवाला ही दूसरे का दमन कर सकता है।
208. मनुष्य अपना स्वामी आप है, भला दूसरा कौन स्वामी हो सकता है? अपने आपको भली-भाँति वश में करके प्रजा द्वारा ही यह दुर्लभ स्वामित्व प्राप्त होता है।
209. अपने आप पैदा हुआ, अपने से उत्पन्न, अपने द्वारा किया गया पाप कर्म करनेवाले दुर्बुद्धि को उसी प्रकार पीड़ित करता है, जिस प्रकार की पाषाण मय मणि को वज्र।
210. शाल वृक्ष पर फैली हुई मालुवा लता के समान जिसका दुराचार खूब फैला हुआ है, वह अपने आपको वैसा ही बना लेता है जैसा कि उसके शत्रु चाहते हैं।
211. बुरे और अपने लिए अहितकारी काम करना सरल है, किंतु भला और हितकारी काम करना बड़ा दुष्कर है।
212. धर्म का जीवन जीनेवाले, आर्य, अरहंतों के शासन की जो दुर्बुद्धि पाप-पूर्ण दृष्टि के कारण निंदा करता है, वह बाँस के फल-फूल की भाँति आत्महत्या के लिए ही फलता-फूलता है।
213. अपने द्वारा किया गया पाप ही अपने को मैला करता है, स्वयं पाप न करे तो आदमी आप ही विशुद्ध बना रहे, शुद्धि-अशुद्धि तो प्रत्येक मनुष्य की अपनी-अपनी ही है, कोई दूसरा भला किसी दूसरे को कैसे शुद्ध कर सकता है?
214. परमार्थ के लिए आत्मार्थ को बहुत ज्यादा भी न छोड़ें, आत्मार्थ को जानकार सदर्थ में लगे रहें।
215. पाँच काम गुणोंवाले निकृष्ट धर्म का सेवन न करें, न प्रमाद में लिप्त हों, मिथ्या दृष्टि को न अपनाएँ, और अपने आवागमन को बढ़ानेवाला न बने।
216. उत्साही बनें, प्रमाद न करें, सुचरित धर्म का आचरण करें, धर्मचारी इस लोक और परलोक दोनों जगह सुखपूर्वक विहार करता है।
217. सुचरित धर्म का आचरण करें, दुराचरण से बचें, धर्मचारी इस लोक और परलोक दोनों जगह सुखपूर्वक विहार करता है।

218. जो इस लोक को बुलबुले के समान और मृग मरीचिका के समान देखे, ऐसे देखनेवाले की ओर मृत्युराज आँख उठाकर नहीं देखता।
219. आओ, चित्रित राजरथ के समान इस लोक को देखो जहाँ मूढ़ जन आसक्त होते हैं, ज्ञानी जन आसक्त नहीं होते।
220. जो पहले प्रमाद करके भी पीछे प्रमाद नहीं करता, वह मेघयुक्त चंद्रमा की भाँति इस लोक को प्रकाशित करता है।
221. जो अपने पहले किए हुए पाप कर्म को वर्तमान के कुशल कर्म से ढँक लेता है, वह मेघयुक्त चंद्रमा की भाँति इस लोक को खूब रोशन करता है।
222. यह लोक प्रज्ञा चक्षु के अभाव में अंधे जैसा है, यहाँ विपश्यना करनेवाले थोड़े ही हैं, जाल से मुक्त हुए पक्षी विपश्यना करनेवाले थोड़े ही हैं, जाल से मुक्त हुए पक्षी की भाँति विरले ही सुगति अथवा निर्वाण को जाते हैं, बाकी तो जाल में ही फँसे रहते हैं।
223. हंस आकाश मार्ग से उड़ते हैं, कोई रिद्धि बल से आकाश में उड़ते हैं, लेकिन धैर्यवान लोग इस लोक को जीत कर निर्वाण पाकर आकाश में उड़ते हैं।
224. एक सत्य धर्म का अतिक्रमण कर जो झूठ बोलता है, परलोक के प्रति उदासीन ऐसे प्राणी के लिए कोई इस प्रकार का पाप नहीं रह जाता जो वह न कर सके।
225. कृपण लोग देवलोक में नहीं जाते, मूढ़ लोग ही दान की प्रशंसा नहीं करते हैं, पंडित दान का अनुमोदन करता हुआ उसी कर्म के आधार पर परलोक में सुखी होता है।
226. पृथ्वी के एकछत्र राज्य, अथवा स्वर्गारोहण अथवा सारे लोकों के अधिपत्य से अधिक उत्तम है सोतास्ति का फल।
227. जिसकी विजय को अविजय में नहीं बदला जा सकता, जिसके द्वारा विजित राग, द्वेष, मोहादि वापस संसार में नहीं बाँधते, उस अपद अन्नत गोचर बुद्ध को किस उपाय से मोहित कर सकोगे?
228. जिसकी जाल फैलानेवाली विषाक्त तृष्णा कहीं भी ले जाने में समर्थ नहीं रही, उस अनंत गोचर बुद्ध को किस उपाय से मोहित कर सकोगे?
229. जो पंडित जन ध्यान करने में लगे रहते हैं, और त्याग तथा उपशमन में लगे रहते हैं, उन स्मृतिमान संबुद्धों की देवता भी प्रशंसा करते हैं।
230. मनुष्य योनी पाना कठिन है, मनुष्यों का जीवित रहना कठिन है, सधर्म का श्रवण कर पाना कठिन है और बुद्धों का उत्पन्न होना कठिन है।
231. सभी पापकर्मों को न करना, पुण्य कर्मों को न करना, पुण्य कर्मों की संपदा संचित करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना यही बुद्ध की शिक्षा है।
232. सहनशीलता और क्षमाशीलता परम ताप है, बुद्ध जन निर्वाण को उत्तम बतलाते हैं, दूसरे का घात करनेवाला प्रवर्जित नहीं होता और दूसरों को सतानेवाला श्रमण नहीं हो सकता।

233. निंदा न करना, घात न करना, भिक्षु नियमों द्वारा अपने को सुरक्षित रखना, अपने आहार की मात्रा का जानकार होना, एकांत में सोना-बैठना और चित्त को एकाग्र करने के प्रयत्न में जुटना—यह सभी बुद्धों की शिक्षा है।
234. स्वर्णमुद्राओं की वर्षा से भी कामभोगों की तृप्ति नहीं हो सकती, यह जानकर कि कामभोग अल्प आस्वादवाले और दुःखद होते हैं, कोई पंडित दैवी कामभोगों में आनंद नहीं पा सकता, सम्यक् संबुद्ध का श्रावक तृष्णा का क्षय करने में लगा रहता है।
235. मनुष्य भय के मारे पर्वतों, वनों, उद्यानों, वृक्षों, चैत्यों—आदि की शरण में जाते हैं, परंतु यह शरण उत्तम नहीं है, इस शरण को पाकर सभी दुःखों से छुटकारा नहीं होता।
236. जो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में गया है, जो चार आर्य सत्यों—दुःख, दुःख की उत्पत्ति, दुःख से मुक्ति और मुक्तिगामी आर्य अष्टांगिक मार्ग को सम्यक् प्रज्ञा से देखता है, यही मंगलदायक शरण है, यही उत्तम शरण है, इसी शरण को प्राप्त कर व्यक्ति सभी दुःखों से मुक्त होता है।
237. श्रेष्ठ पुरुष का जन्म दुर्लभ होता है, वह सब जगह पैदा नहीं होता, वह उत्तम प्रज्ञावाला धीर पुरुष होता है, उस कुल में सुख की वृद्धि होती है।
238. सुखदायी है बुद्धों का उत्पन्न होना, सुखदायी है सधर्म का उपदेश। सुखदायी है संघ की एकता, सुखदायी है एक साथ तपना।
239. पूजा के योग्य बुद्ध तथा श्रावक वे हैं—जो (भव) प्रपंच का अतिक्रमण कर चुके हैं और शोक तथा भय को पार कर गए हैं।
240. निर्वाण प्राप्त, निर्भय हुए—ऐसे लोगों की पूजा के पुण्य का परिमाण इतना होगा यह कहा नहीं जा सकता।
241. वैरियों के बीच अवैरी होकर, अहो! हम बड़े सुख से जी रहे हैं, वैरी मनुष्यों के बीच हम अवैरी होकर विचरण करते हैं।
242. तृष्णा से आतुर व्याकुल लोगों के बीच, अहो हम अनातुर होकर अनाकुल रहकर बड़े सुख से जी रहे हैं। आतुर रोगी मनुष्यों में हम अनातुर (निरोग) रहकर विचरण करते हैं।
243. कामभोगों के प्रति आसक्त (लोभी) लोगों के बीच हम अनासक्त (अलोभी) होकर, अहो! हम बड़े सुख से जी रहे हैं, अलोभियों के बीच हम निर्लोभी होकर विचरण करते हैं।
244. जिनके पास कुछ नहीं है, अहो! वैसे हम कैसे बड़े सुख से जी रहे हैं। आभास्वर देवताओं के समान हम प्रीति का ही भोजन करनेवाले होंगे।

245. विजय वैर को जन्म देती है, पराजित व्यक्ति दुःख की नींद सोता है, जिसके रागद्वेष शांत हो गए हैं, वह जय-पराजय को छोड़कर सुख की नींद सोता है।
246. राग के समान कोई आग नहीं, द्वेष के समान कोई दुर्भाग्य नहीं, पाँच स्कंध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) के समान कोई दुःख नहीं, शांति (निर्वाण) से बढ़कर कोई सुख नहीं।
247. भूख (तृष्णा) सबसे बड़ा रोग है। भूख संस्कार का सबसे बड़ा दुःख (तृष्णा और उससे बनते संस्कारों को अपने भीतर विपश्यना साधना से) यथाभूत जानकर जो निर्वाण प्राप्त होता है, वह सबसे बड़ा सुख है।
248. आरोग्य परम लाभ है, संतुष्टि परम धन है, विश्वास परम बंधु है, निर्वाण परम सुख है।
249. पूर्ण एकांत का रस पान कर और ऐसे ही शांति (निर्वाण) का रस पानकर व्यक्ति निडर होता है और धर्म-प्रीति का रस पान कर वह निष्पाप हो जाता है।
250. आर्यो (श्रेष्ठ पुरुषों) का दर्शन अच्छा होता है, संतों के साथ निवास सदा सुखकर होता है, मूढ़ (पुरुषों) के अदर्शन से सदा सुखी बने रहो।
251. मूढ़ (पुरुषों) के साथ संगत करनेवाला दीर्घ काल तक शोकग्रस्त रहता है, मूढ़ों का सहवास शत्रु के समान सदा दुःखदायी होता है, बंधुओं के समागम की भाँति जानियों का सहवास सुखदायी होता है।
252. धीर प्रज्ञावान, बहुश्रुत, उद्योगी, व्रती पुरुष ऐसे सुमेध सत्पुरुष का साथ करें जैसे चंद्रमा नक्षत्र-पथ का करता है।
253. अनुचित कर्म में लगा हुआ, उचित कर्म में न लगनेवाला और सदर्थ को छोड़कर (पाँच कामगुणरूपी) उस पुरुष का साथ करें जो आत्मउन्नति में लगा हो।
254. प्रियों का संग न करें और न कभी अप्रियों का, क्योंकि प्रियों का न दिखना दुःखदायी होता है और अप्रियों का दर्शन भी दुःखदायी होता है।
255. किसी को भी प्रिय न बनाएँ क्योंकि प्रिय का वियोग बुरा लगता है। जिनके कोई प्रिय-अप्रिय नहीं होते, उनके कोई बंधन नहीं होते।
256. प्रिय वस्तु से शोक उत्पन्न होता है, प्रिय से भय उत्पन्न होता है। प्रिय के बंधन से विमुक्त व्यक्ति को शोक नहीं होता, फिर भय कहाँ से होगा।
257. पंचगुणात्मक राग करने से शोक उत्पन्न होता है, राग से भय उत्पन्न होता है। राग के बंधन से विमुक्त व्यक्ति को शोक नहीं होता, फिर भय कहाँ से होगा।
258. कामना से शोक उत्पन्न होता है, काम से भय उत्पन्न होता है, तृष्णा से भय उत्पन्न होता है। तृष्णा से विमुक्त व्यक्ति को शोक नहीं होता, फिर भय कहाँ से होगा।
259. छह द्वारों पर होनेवाली तृष्णा से शोक उत्पन्न होता है, तृष्णा से भय उत्पन्न होता है। तृष्णा से विमुक्त व्यक्ति को शोक नहीं होता, फिर भय कहाँ से होगा।

260. जो शीलसंपन्न, सम्यक् दृष्टिसंपन्न, धर्मनिष्ठ (नव प्रकार के लोकोत्तर धर्मों में शथित) सत्यवादी, कर्तव्यपरायण है, उसे लोग प्यार करते हैं।
261. जो अनिर्वाण का अभिलाषी हो, उसी में जिसका मन लगा हो, और कामभोगों में जिसका चित्त रुंधा हो, वह उर्ध्वस्रोत कहा जाता है।
262. जैसे चिरकाल तक परदेस में रहने के बाद दूर देश से सकुशल आए पुरुष का संबंधी, मित्र और हितैषीजन स्वागत करते हैं, वैसे ही पुण्यकर्मा पुरुष के इस लोक से परलोक में जाने पर उसके पुण्य उसका वैसे स्वागत करते हैं, जैसे अपने प्रिय के लौटने पर उसके संबंधी उसका स्वागत करते हैं।
263. क्रोध को छोड़ दें, अभिमान का त्याग करें, सारे संयोजनों (बंधनों) को पार कर जाएँ, ऐसे नामरूप में आसक्त न होनेवाले अपरिग्रही को दुःख संतप्त नहीं करते।
264. जो भड़के हुए क्रोध को बड़े वेग से घूमते हुए रथ के समान रोक ले, उसे मैं सारथि कहता हूँ, दूसरे लोग तो मात्र लगाम पकड़नेवाले होते हैं।
265. अक्रोध से क्रोध को जीतें, अभद्र को भद्र बनकर जीतें, कृपण को दान से जीतें और झूठ बोलनेवाले को सत्य से जीतें।
266. सच बोलें, क्रोध न करें, माँगने पर थोड़ा रहते हुए भी दें। इन तीन कारणों से कोई व्यक्ति देवताओं के निकट देवलोक में चला जाता है।
267. जो मुनिजन अहिंसक है और जो सदा काया में संयत रहते हैं, वे इस शाश्वत निर्वाण को पा लेते हैं जहाँ पहुँचकर शोक नहीं करते।
268. जो सदा जागरूक रहते हैं, वे रात-दिन सीखने में लगे रहते हैं और उनका ध्येय निर्वाण प्राप्त करना है।
269. लोग चुप बैठे हुए की निंदा करते हैं, बहुत बोलनेवाले की निंदा करते हैं, मितभाषी की भी निंदा करते हैं, संसार में अनिंदित कोई भी नहीं है।
270. ऐसा पुरुष जिसकी निंदा होती हो, या प्रशंसा-ही-प्रशंसा, न कभी था, न कभी होगा, न इस समय वह है।
271. विज्ञ लोग सोच-विचार कर जिस प्रज्ञा व शील से युक्त निर्दोष, मेधावी की दिन प्रतिदिन प्रशंसा करते हैं।
272. कायिक चंचलता से बचे रहें, काया से संयत रहें। कायिक दुराचार को त्यागकर शरीर से सदाचरण करो।
273. वाचिक चंचलता से बचे रहें, वाणी से संयत रहें। वाचिक दुराचार को त्यागकर वाणी का सदाचरण करो।
274. मानसिक चंचलता से बचें, मन संयत रखें। मानसिक दुराचार को त्याग कर मानसिक सदाचरण करो।

275. जो धीर पुरुष काया से संयत हैं, वाणी से संयत हैं, मन से संयत हैं, वे ही पूर्णतया संयत हैं।
276. अरे, उपासक पीले पत्ते की तरह इस समय तू है, यमदूत तेरे पास खड़े हैं, तू प्रयाण के लिए तैयार है और रास्ते के लिए तेरे पास कुछ नहीं है।
277. तू अपने लिए रक्षा स्थल बना, शीघ्र साधना का अभ्यास कर, पंडित हो जा। तू मल का प्रक्षालन कर, निर्मल बन, पुनःजन्म, जरा के बंधन में नहीं पड़ेगा।
278. समझदार व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने मैल को क्रमशः थोड़ा-थोड़ा क्षण-प्रतिक्षण वैसे ही दूर करे जैसे कि सुनार चाँदी के मैल को दूर करता है।
279. जैसे लोहे के ऊपर उठा हुआ जंग उसी पर उठकर उसी को खाता है, वैसे ही मर्यादा को उल्लंघन करनेवाले व्यक्ति के अपने ही क्रम उसे दुर्गति की ओर ले जाते हैं।
280. स्वाध्याय न करना बुद्धि का मल है, मरम्मत न करना (झाड़ू-बुहार न करना) घरों का मल है, आलस्य सौंदर्य का मल है और प्रमाद प्रहरी का मल है।
281. दुश्चरित्र होना स्त्री का मल है, कृपणता दाता का मल है और सभी पापपूर्ण धर्म इहलोक और परलोक के मल हैं।
282. उससे भी बढ़कर अविद्या (आठ प्रकार का ज्ञान) परम मल है। हे साधकों, इस मल को दूर करके निर्मल बन जाओ।
283. पापाचार के प्रति निर्लज्ज, कौवे के समान छीनने में शूर, परहित विनाशी, आत्मश्लाघी बड़बोला, दुःसाहसी, मलिन पुरुष का जीवन सुखपूर्वक बीतता हुआ देखा जाता है।
284. पापाचार के प्रति लजालु, नित्य पवित्रता का ध्यान रखनेवाले अप्रमादी, अनुच्छृंखल, शुद्ध जीविकावाले पुरुष के जीवन को कठिनाई से बीतते देखा जाता है।
285. जो संसार में हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, परस्त्रीगमन करता है, मद्यपान करता है, वह व्यक्ति यहीं—इसी लोक में अपनी जड़ें खोदता है।
286. हे पुरुष, ऐसा जान कि अकुशल धर्म पर संयम करना आसान नहीं है। तुझे लोभ (राग) तथा अधर्म (पाप, अकुशल धर्म) चिरकाल तक दुःख में न रौंधते रहें।
287. लोग अपनी श्रद्धा और प्रसन्नता के अनुरूप दान देते हैं। दूसरों के खाने-पीने से जो खिन्न होता है वह दिन हो या रात (कभी-कभी) समाधि को प्राप्त नहीं होता है।
288. किंतु जो लोग अपनी श्रद्धा और प्रसन्नता के अनुरूप दान देते हैं, दूसरों के खाने-पीने से जो प्रसन्न होते हैं, वे दिन हो या रात सदैव एकाग्रता तो प्राप्त होते हैं।
289. राग के समान अग्नि नहीं, न द्वेष के समान जकड़न। मोह के समान फंदा नहीं है, न तृष्णा के समान नदी।
290. दूसरों के दोष देखना आसान है, किंतु अपना दोष देखना कठिन। वह व्यक्ति दूसरों को भूसे की तरह उड़ाता फिरता है, किंतु अपने दोषों को वैसे ही ढँकता है जैसे बेईमान

जुआरी पासे को।

291. दूसरो के दोषों को देखने में लगे हुए, सदा शिकायत करने का चेतनावाले व्यक्ति के आश्रव (चित्त-मल) बढ़ते हैं, वह आश्रवों के क्षय से दूर होता है।
292. आकाश में कोई पदचिह्न नहीं होता, बुद्ध शासन से बाहर कोई श्रमण नहीं होता। लोग भाँति-भाँति के प्रपंचों में पड़े होते हैं, किंतु तथागत निष्प्रपंच होते हैं।
293. आकाश में कोई पदचिह्न नहीं होता, बुद्ध शासन से बाहर मुक्ति के मार्ग पर चलता पुआ या मुक्ति का फल प्राप्त कोई श्रमण नहीं होता, संस्कार (पाँच स्कंध) शाश्वत नहीं होता, बुद्धों में (किसी प्रकार की) चंचलता नहीं होती।
294. जो व्यक्ति सहसा किसी बात का निश्चय कर ले, वह धर्मिष्ठ नहीं कहा जाता है। जो अर्थ और अनर्थ दोनों का चिंतन कर निश्चय कर ले, वह पंडित कहलाता है।
295. जो व्यक्ति धीरज के साथ धर्मपूर्वक, निष्पक्ष होकर दूसरों का मार्गदर्शन करता है, वह धर्मरक्षक मेधावी धर्मिष्ठ कहलाता है।
296. (संघ के बीच) बहुत बोलने से कोई पंडित नहीं हो जाता। कुशलक्षेम से रहनेवाला, वैररहित तथा निर्भय व्यक्ति ही पंडित कहा जाता है।
297. बहुत बोलने से कोई धर्मधर नहीं हो जाता है, जो कोई थोड़ी सी भी (धर्म का बात) सुनकर धर्म के दर्शन करने लगता है (अर्थात्, विपश्यना करने लगता है) और जो धर्म (के आचरण) में प्रमाद नहीं करता, वही निःसंदेह धर्मधर होता है।
298. सिर के बाल पकने से कोई स्थविर नहीं हो जाता, (केवल) उसकी आयु पकी है, वह तो व्यर्थ का वृद्ध कहा जाता है।
299. जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम और दम है, वही विगतमल, धृतिसंपन्न स्थिवर कहा जाता है।
300. जो ईर्ष्यालु, मत्सरी और शठ है, वह वक्तामात्र होने से अथवा सुंदर-रूप होने से साधुरूप मनुष्य नहीं हो जाता।
301. जिसके भीतर से ईर्ष्या जड़मूल से सर्वथा उच्छिन्न हो गए हैं, वह विगतदोष मेधावी पुरुष साधुरूप कहा जाता है।
302. जो शीलव्रत और धुतांगव्रत पालन न करने से अव्रती है और जो झूठ बोलनेवाला है, वह सिर मुंडा लेने मात्र से श्रमण नहीं हो जाता। इच्छा और लाभ से ग्रस्त भला क्या श्रमण होगा?
303. दूसरों से भिक्षा माँगने मात्र से कोई भिक्षु नहीं हो जाता और न ही भिक्षु होता है विषम धर्म को ग्रहण करने से।
304. जो यहाँ (इस शासन में) पुण्य और पाप को दूर रखकर, ब्रह्मचारी बन, विचार करके लोक में विचरण करता है, वही वस्तुतः भिक्षु कहा जाता है।

305. अविद्वान और मूढ़ समान (पुरुष) केवल मौन रहने से मुनि नहीं हो जाता। जो पंडित तराजू के समान तोलकर (शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति) उत्तम तत्त्व को ग्रहण कर।
306. पाप कर्मों का परित्याग कर देता है, वह मुनि होता है, इस बात से वह मुनि होता है।
चूँकि वह दोनों लोकों का मनन करता है, इस कारण वह मुनि कहा जाता है।
307. प्राणियों की हिंसा करने से कोई आर्य नहीं हो जाता। सभी प्राणियों की हिंसा न करने से वह आर्य कहा जाता है।
308. केवल शील पालने और व्रत करने से या बहुश्रुत होने से या समाधि के लाभ से या एकांत में शयन करने से पृथग्जन, जिसे सेवन नहीं कर सकते, मैंने उस नैष्कर्म्य सुख को प्राप्त कर लिया है ऐसा सोच है भिक्षुओं आश्रवों का क्षय न हो जाने तक तुम आश्वस्त होकर चैन से बैठे मत रहो।
309. मार्गों में अष्टांगिक मार्ग श्रेष्ठ है, सच्चाइयों में चार आर्य-सत्य, धर्मों में वीतरागता श्रेष्ठ है, द्विपदों में चक्षुमान बुद्ध। दर्शन की विशुद्धि (ज्ञान की प्राप्ति) के लिए यही मार्ग है, (कोई) दूसरा नहीं। तुम इसी पर आरुढ़ होओ, यह किंकर्तव्यविमूढ़ बनानेवाला है।
310. अष्टांगिक मार्ग पर आरुढ़ होकर तुम दुःख का अंत कर लोगे। मेरे द्वारा शल्य काटनेवाले इस मार्ग को स्वयं जानकर तुम्हारे लिए आख्यान किया गया है।
311. तपना तो तुम्हें पड़ेगा, तथागत तो मार्ग आख्यात करते हैं। इस मार्ग पर आरुढ़ होकर ध्यान करनेवाले मार के बंधन से सर्वथा मुक्त हो जाते हैं।
312. सारे संसार अनित्य हैं, यानी कि जो कुछ उत्पन्न होता है, वह नष्ट होता ही है, इस सच्चाई को जब कोई प्रज्ञा से जान लेता है, तब उसको दुःखों से निर्वेद प्राप्त होता है, अर्थात् दुःख क्षेत्र के प्रति भोक्ताभाव टूट जाता है, ऐसा है यह विशुद्धि का मार्ग।
313. सारे संस्कार दुःख हैं यानी कि जो कुछ उत्पन्न होता है, वह नाशवान होने के कारण दुःख ही है, जब कोई विपश्यना प्रज्ञा से देख लेता है, तब उसको सभी दुःखों से निर्वेद प्राप्त होता है अर्थात्, दुःख-क्षेत्र के प्रति भोक्ता भाव टूट जाता है—ऐसा है यह विशुद्धि का मार्ग।
314. जो उद्योग करने के समय उद्योग नहीं करता, युवा और बलशाली होने पर भी आलस्य करता है, मन के संकल्पों को गिरा देता है, निर्वीर्य होता है—ऐसा आलसी व्यक्ति प्रज्ञा का मार्ग नहीं पा सकता।
315. वाणी को संयत रखें, मन को संयत रखें और शरीर से कोई अकुशल काम न करें। इन तीनों कर्मपथों यानी कर्मेन्द्रियों का विशोधन करें। ऋषि के बताए अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करें।
316. योग के अभ्यास से प्रज्ञा उत्पन्न होती है, उसके अभाव से उसका क्षय होता है। उत्पत्ति और विनाश के योग तथा अयोग इन दो प्रकारों के मार्गों को जानकर अपने आपको इस प्रकार विनियोजित करें, जिससे प्रज्ञा की भरपूर वृद्धि हो।

317. आसक्तिरूपी वन को काटो, शरीररूपी वृक्ष को नहीं। भय से वन पैदा होता है। हे साधकों, वन को और तृष्णारूपी झाड़ को काटकर अनासक्त हो जाओ।
318. जब तक जरा सी भी नर की नारियों के प्रति कामना बनी रहती है, तब तक जैसे दूध पीनेवाला बछड़ा माता में आबद्ध रहता है वैसे ही नर भी उनमें आसक्त रहता है।
319. जिस प्रकार हाथ से शरद ऋतु के कुमुद को तोड़ा जाता है, उसी प्रकार अपने हृदय को स्नेह से उच्छिन्न कर डालो। बुद्ध द्वारा बताए इस शांति मार्ग को निर्वाण के लिए चुन लो।
320. मैं यहाँ वर्षाकाल में रहूँगा, यहाँ हेमंत और ग्रीष्म में—मूढ़ व्यक्ति इस प्रकार सोचता है और किसी संभावित बाधा को नहीं बूझता कि मैं किसी भी समय, देश अथवा उम्र में इस जीवन से कूच कर सकता हूँ।
321. जैसे सोए हुए गाँव को कोई बड़ी बाढ़ बहाकर ले जाए, वैसे ही पुत्र और पशु के नशे में धुत्त आसक्तचित्त व्यक्ति को मृत्यु पकड़कर ले जाती है।
322. पुत्र रक्षा नहीं कर सकते, न पिता और न ही बंधुजन। जब मृत्यु पकड़ लेती है तब जातिवाले रक्षा नहीं कर सकते। इस तथ्य को जानकर शील में संयत समझदार व्यक्ति निर्वाण की ओर ले जानेवाले मार्ग का शीघ्र ही विशोधन करे।
323. यदि कोई धीर व्यक्ति थोड़े से सुख के परित्याग से विपुल निर्वाण सुख का लाभ देखे, तो वह विपुल सुख का ख्याल करके थोड़े से सुख को छोड़ दे।
324. दूसरे को दुःख देकर जो अपने लिए सुख चाहता है, वैर के संसर्ग में पड़कर वैर से मुक्त नहीं हो पाता।
325. जो करणीय से हाथ खींच ले किंतु अकरणीय करे, ऐसे खोखले (घमंडी) प्रमादियों के चित्तमल बढ़ते रहते हैं।
326. जिनकी दिनरात, हर समय बुद्ध-विषयक स्मृति बनी रहती है, वे गौतम बुद्ध के श्रावक सदैव भली-भाँति प्रबुद्ध बने रहते हैं।
327. जिनकी दिन रात, हर समय धर्म-विषयक स्मृति बनी रहती है, वे गौतम बुद्ध के श्रावक सदैव भली-भाँति प्रबुद्ध बने रहते हैं।
328. जिनकी दिन रात, हर समय संघ-विषयक स्मृति बनी रहती है, वे गौतम बुद्ध के श्रावक सदैव भली-भाँति प्रबुद्ध बने रहते हैं।
329. जिनकी दिन रात, हर समय कायगता-विषयक स्मृति बनी रहती है, वे गौतम बुद्ध के श्रावक सदैव भली-भाँति प्रबुद्ध बने रहते हैं।
330. जिनका मन दिन रात, हर समय मैत्री भाव में रमा रहता है, वे गौतम बुद्ध के श्रावक सदैव भली-भाँति प्रबुद्ध बने रहते हैं।
331. जिनका मन दिन रात, हर समय अहिंसा में रमा रहता है, वे गौतम बुद्ध के श्रावक सदैव भली-भाँति प्रबुद्ध बने रहते हैं।

332. कष्टपूर्ण प्रवज्या में रत रहना दुष्कर होता है, क्योंकि न रहने योग्य घर दुःखद होते हैं, असमान व्यक्ति से सहवास दुःखदायी होता है, मार्ग का पथिक होना दुःखपूर्ण होती है, इसलिए न तो संसाररूपी मार्ग का पथिक बनें और न दुःख में पड़नेवाला बनें।
333. श्रद्धाभाव, शीलवान और यश और भोग से युक्त कुलपुत्र जिस-जिस प्रदेश में जाता है, वहीं-वहीं लाभ-संस्कार से पूजित होता है।
334. संत लोग हिमालय पर्वत के समान दूर से ही प्रकाशवान होते हैं, किंतु असंत या दुर्जन पास में होने पर भी रात में फेंके गए बाण की भाँति दिखलाई नहीं देते।
335. एक आसन रखनेवाला, एक शय्या रखनेवाला, तंद्रारहित हो एकाकी विचरण करनेवाला, अपने को दमन करके अकेला ही वनों में रमण करता है।
336. सत्य बोलनेवाला नरक में जाता है, और वह भी जो कि पापकर्म करके 'नहीं किया' ऐसा कहता है। दोनों ही प्रकार के नीच कर्म करनेवाला मनुष्य मरकर परलोक में एक समान हो जाता है।
337. कंठ में अस्त्र डाले कितने ही पापी असंयमी हैं जो अपने पापकर्मों में नरक में उत्पन्न होते हैं।
338. असंयमी, दुराचारी होकर राष्ट्र का अन्न खाने से अग्निशिखा के समान तप्त लोहे को खाना अधिक अच्छा है।
339. प्रमादी परस्त्रीगामी की चार गतियाँ होती हैं—1. अपुण्य लाभ, 2. सुख की नींद न आना, 3. निंदा और 4. नरक।
340. जैसे ठीक से न पकड़ा गया तीक्ष्ण धारवाला घास का तिनका हाथ को ही छेद देता है, वैसे ही गलत प्रकार से ग्रहण किया गया श्रामण्य नरक की ओर खींच ले जाता है।
341. जो कोई कर्म शिथिलता से किया जाए, जो व्रत मलिन है और जो ब्रह्मचर्य अशुद्ध है, वह बड़ा फल देनेवाला नहीं होता।
342. यदि कोई काम करना हो तो उसे करें, उसमें दृढ़ पराक्रम के साथ लग जाएँ। शिथिल परिव्राजक (अपने भीतर रागरजादि होने से) अधिक गंदगी बिखेरता है।
343. बुरे काम करना श्रेयस्कर है, क्योंकि दुष्कृत करनेवाला बाद में अनुताप करता है और अच्छे काम करना श्रेयस्कर है, जिसे करके बाद में अनुताप नहीं करना पड़ता।
344. जैसे कोई सीमावर्ती नगर भीतर-बाहर से खूब सुरक्षित किया जाता है, वैसे ही अपने आपको सुरक्षित रखें। क्षण भर भी न चूकें, क्योंकि क्षण को चूके हुए लोग नरक में पड़कर शोक मनाते हैं।
345. जो अलज्जा के काम में लज्जा करते हैं और लज्जा के काम में लज्जा नहीं करते, मिथ्या दृष्टि से ग्रस्त वे प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं।
346. काम में भय देखनेवाले और भय को काम में भय को न देखनेवाले मिथ्या दृष्टि से ग्रस्त प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

347. अदोष में दोष बुद्धि रखनेवाले और दोष में अदोष बुद्धि रखनेवाले मिथ्या दृष्टि से ग्रस्त प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं।
348. दोष को दोष और अदोष को अदोष जानकर सम्यक्दृष्टिसंपन्न प्राणी सुगति को प्राप्त होते हैं।
349. जैसे किसी संग्राम में हाथी धनुष से छोड़े गए बाण को सहन करता है, वैसे ही मैं दूसरों के दुवचन सहन करूँगा, क्योंकि संसार में दुःशील व्यक्ति ही अधिक हैं।
350. प्रशिक्षित हाथी को परिषद् में ले जाते हैं। प्रशिक्षित पर ही राजा चढ़ता है। मनुष्यों में भी प्रशिक्षित व्यक्ति ही श्रेष्ठ होता है, जो कटुवचन को सह लेता है।
351. खच्चर, अच्छी नस्ल के सैंधव घोड़े और महानाग हाथी प्रशिक्षित होने पर उत्तम होते हैं, परंतु अपने आपको प्रशिक्षित किया हुआ पुरुष उनसे श्रेष्ठ होता है।
352. हाथी, घोड़े आदि सवारियों से बिना गई दिशा निर्वाण तक नहीं जाया जा सकता, जैसे कि अपने आपको प्रशिक्षित बनाकर कोई व्यक्ति इंद्रियों के साथ यहाँ तक चला जाता है।
353. जो पुरुष आलसी, पेटू, निद्रालु, करवट बदल-बदलकर सोनेवाला और दाना खाकर पुष्ट हुए मोटे सूअर के समान होते हैं, वह मंदबुद्धि बार-बार गर्भ में पड़ता है।
354. ये जो जहाँ इच्छा हो, जहाँ कामना हो, जहाँ सुख दिखे, वहाँ चलायमान हो जानेवाला चित्त है, पहले इसे अचंचल बनाऊँगा। इसे ऐसे ही भली-भाँति वश में करूँगा जैसे कि अंकुशधारी महावत बिगड़ैल हाथी को वश में करता है।
355. अप्रमाद में जुटो। अपने चित्त की रक्षा करो। कीचड़ में धँसे हाथी के समान अपने आपको कठिन मार्ग से बाहर निकालो और निर्वाण के धरातल पर प्रतिष्ठापित करो।
356. यदि किसी को साथ चलने के लिए कोई साधु विहारी, धैर्यसंपन्न, बुद्धिमान साथी मिल जाए तो वह सारी परेशानियों को ताक पर रखकर प्रसन्नवदन और स्मृतिमान होकर उसके संग विचरण करें।
357. यदि किसी को साथ चलने के लिए कोई साधु विहारी, धैर्यसंपन्न, बुद्धिमान साथी न मिले, तो वह पराजित राष्ट्र को छोड़कर जाते हुए राजा के समान अथवा हस्तवन में हाथी के समान अकेला विचरण करे।
358. अकेला विचरना उत्तम है लेकिन मूढ़ की मित्रता अच्छी नहीं। हस्तिवन में हाथी के समान अनासक्त होकर अकेला विचरण करें और पाप न करें।
359. काम पड़ने पर मित्रों का होना सुखकर रहे। जिस किसी छोटी या बड़ी चीज से संतुष्ट हो जाना यह भी सुखकारक है। जीवन के क्षय होने पर पुण्य सुखदायक होता है। सारे दुःखों का नष्ट हो जाना सर्वाधिक सुखकर है।
360. लोक में माता की सेवा करना सुखकर है, और ऐसे ही पिता की सेवा भी सुखकर है। लोक में श्रमण की सेवा करना सुखकर है और ऐसे ही ब्राह्मण की सेवा करना भी

सुखकर है।

361. बुढ़ापे तक शील का पालन करना सुखकर होता है, अचल श्रद्धा सुखकर होती है, प्रज्ञा का लाभ सुखकर होता है और पाप कर्मों का न करना सुखकर होता है।
362. प्रमत्त होकर आचरण करनेवाले मनुष्य की तृष्णा मालुवा लता की भाँति बढ़ती है, वन में फल की इच्छा से एक शाखा छोड़कर दूसरी शाखा पकड़ते बंदर की तरह वह एक भव से दूसरे भव में भटकता रहता है।
363. लोक में यह विषमयी तृष्णा जिस किसी को अभिभूत कर लाती है, उसके दुःख, शोक बढ़ने लगते हैं जैसे कि वर्षा ऋतु में वीरण नाम की जंगली घास बढ़ती रहती है।
364. इस बार-बार जन्मनेवाली दुरतिक्रमणीय तृष्णा को जो लोक में अभिभूत कर देता है, उसके शोक वैसे ही झड़ जाते हैं जैसे पद्म पत्र से पानी की बूँदें।
365. इसलिए मैं तुम्हें, जितने यहाँ आए हो, कहता हूँ, तुम्हारे कल्याण के लिए कहता हूँ। जैसे बड़ी कुदाल लेकर बीरण (एक प्रकार की घास) को खोदते हैं, ऐसे ही तृष्णा को जड़ से उखाड़ डालो। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हें देवपुत्र वैसे ही बार-बार उखाड़ता रहे, जैसे नदी के स्रोत में उगे हुए सरकंडे को बड़े वेग से आता हुआ नदी के प्रवाह।
366. जैसे जड़ के बिलकुल नष्ट होने और उसके दृढ़ बने रहने पर कटा हुआ वृक्ष फिर से उग जाता है, वैसे ही तृष्णारूपी अनुशय के जड़ से अलग न होने पर यह दुःख बार-बार उत्पन्न होता है।
367. जिसके छत्तीस स्रोत मन को प्रिय लगनेवाली वस्तुओं की ओर ही जाते हों, उस मिथ्या दृष्टिवाले व्यक्ति को उसके राग निश्चित संकल्प बहा ले जाते हैं।
368. वे स्रोत सभी ओर बहते हैं, जिसके कारण तृष्णारूपी लता अंकुरित रहती है। उस उत्पन्न हुई लता को देखकर प्रज्ञा से उसकी जड़ को काट डालो।
369. तृष्णारूपी नदियाँ प्राणियों को प्रसन्न करनेवाली होती हैं। इस सुख में आसक्त सुख की चाहना करनेवाले जन्म, बुढ़ापा, रोग और मृत्यु के फेर में पड़ जाते हैं।
370. तृष्णा में फँसे प्राणी जंगल में किसी व्याध द्वारा बेधे हुए खरहे के समान चक्कर काटते रहते हैं। इसलिए अपने वैराग्य की आकांक्षा करते हुए साधक को तृष्णा दूर करना चाहिए।
371. जो तृष्णा से छूटकर, तृष्णामुक्त है, तृष्णा की ओर ही दौड़ता है, उस व्यक्ति को वैसे ही जानो जैसे कोई बंधन से मुक्त हुआ पुरुष फिर बंधन की ओर ही भागने लगे।
372. यह जो लोहे, लकड़ी या रस्सी का बंधन है, उसे पंडित जन दृढ़ बंधन नहीं कहते। क्योंकि वास्तविकता में दृढ़ बंधन मणियों, कुंडलों, पुत्रों तथा स्त्री में तृष्णा का होना है।
373. पंडितजन इसी को दृढ़, पतनोन्मुख, शिथिल और दुरत्याज्य बंधन कहते हैं। वे अपेक्षा रहित हो, कामसुख को छोड़कर, इस दृढ़ बंधन को भी ज्ञान रूपी खड्ग से काटकर

प्रव्रजित हो जाते हैं।

374. आगे भूत, पीछे भविष्य और मध्य वर्तमान की सारी बातें छोड़कर भवसागर को पार हो जाओ। सब ओर से विमुक्त होकर तुम फिर से जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु को नहीं प्राप्त होगे।
375. कामवितर्कादि से ग्रस्त, तीव्र रागयुक्त और शुभ ही शुभ देखनेवाले प्राणी की तृष्णा और भी बढ़ती है, इससे वह अपने लिए और भी दृढ़ बंधन तैयार करता है।
376. जो वितर्कों के शांत करने में लगा है और सदा स्मृतिमान रहकर अशुभ की भावना करता है, वह मार के बंधन को काट देगा, वह निश्चय ही इस तृष्णा का विनाश कर देगा।
377. जिसने लक्ष्य पा लिया हो, जो निर्भय, तृष्णारहित और मलविहीन हो गया हो, जिसने भव प्राप्त करानेवाले शल्यों को काट दिया हो, उसका यह अंतिम जीवन होता है।
378. जो तृष्णारहित अपरिग्रही, निरुक्ति और चार प्रतिसंभिदाओं में निपुण हो वही अंतिम देहधारी, महाप्रज्ञ और महापुरुष कहा जाता है।
379. मैं सबको परास्त करनेवाला, सर्वज्ञ, सारे धर्मों से अलिप्त, सर्वत्यागी हूँ, तृष्णा का क्षय हो जाने से विमुक्त हूँ। परम ज्ञान को स्वयं की अनभिज्ञता से जानकर मैं किसको अपना उपाध्याय या आचार्य बतलाऊँ?
380. धर्म का दान सब दानों को जीत लेता है। धर्म का रस सब रसों को जीत लेता है। धर्म में रमण करना सभी रमण-सुखों को जीत लेता है। तृष्णा का क्षय सब दुःखों को जीत लेता है।
381. संसार को पार करने का प्रयत्न न करनेवाले दुर्बुद्धि को भोग नष्ट कर देते हैं। भोगों की तृष्णा में पड़कर वह दुर्बुद्धि पराए के समान अपना ही हनन कर लेता है।
382. भाँति-भाँति के तृण उगना खेतों का दोष है, क्योंकि ऐसे खेत बहुत उपजते नहीं हैं। अंदर जागनेवाला राग प्रजा के दोष हैं, क्योंकि ऐसे लोगों को दान देने से कोई बड़ा फल प्राप्त नहीं होता। इसलिए वीतराग व्यक्तियों को ही दान देना चाहिए, जिससे महान् फल प्राप्त होता है।
383. खेतों का दोष तृण है। प्रजा का दोष द्वेष है, इसलिए वीतद्वेष व्यक्तियों को दान देने से महान् फल प्राप्त होता है।
384. खेतों का दोष तृण है। प्रजा का दोष मोह है, इसलिए वीतमोह व्यक्तियों को दान देने से महान् फल प्राप्त होता है।
385. खेतों का दोष तृण है। प्रजा का दोष इच्छा है, इसलिए इच्छारहित व्यक्तियों को दान देने से महान् फल प्राप्त होता है।
386. खेतों का दोष तृण है। प्रजा का दोष तृष्णा है, इसलिए तृष्णारहित व्यक्तियों को दान देने से महान् फल प्राप्त होता है।

387. चक्षु का संयम अच्छा है, अच्छा है श्रोता का संयम। घ्राण का संयम अच्छा है, अच्छा है जिह्वा का संयम।
388. शरीर को संयम अच्छा है, अच्छा है वाणी का संयम। मन को संयम अच्छा है, अच्छा है सर्वत्र इंद्रियों का संयम। सर्वत्र संयम प्राप्त भिक्षु सारे दुःखों से मुक्त हो जाता है।
389. जो हाथ, पैर और वाणी में संयत है, जो उत्तम संयमी है, अपने भीतर की सच्चाइयों को जानने में लगा है, समाधियुक्त, एकाकी और संतुष्ट है, उसे भिक्षु कहते हैं।
390. जो भिक्षु मुख से संयत है, सोच-विचार कर बोलता है, उद्धत नहीं है, अर्थ और धर्म को प्रकाशित करता है, उसका बोल मीठा होता है।
391. धर्म में रमण करनेवाला, धर्म में रत, धर्म का चिंतन करते, धर्म का पालन करते भिक्षु सद्धर्म से च्युत नहीं होता।
392. अपने लाभ की अवहेलना नहीं करनी चाहिए, दूसरों के लाभ की स्पृहा नहीं करनी चाहिए। दूसरों के लाभ की स्पृहा करनेवाला भिक्षु साधक चित्त की एकाग्रता को नहीं प्राप्त कर पाता।
393. थोड़ा सा लाभ मिलने पर भी यदि भिक्षु अपने लाभ की अवहेलना नहीं करता है, तो उस शुद्ध जीविकावाले की देवता भी प्रशंसा करते हैं।
394. मैत्री भावना से विहार करता हुआ जो भिक्षु बुद्ध के शासन में प्रसन्न रहता है, वह सभी संस्कारों का शमन करनेवाले शांत और सुखमय निर्वाण को प्राप्त करता है।
395. हे भिक्षु, इस आत्मभाव नाम की नाव को उलीचो, उलीचने पर यह तुम्हारे लिए हल्की हो जाएगी। राग और द्वेषरूपी बंधनों का छेदन कर, फिर तुम निर्वाण को प्राप्त कर लोगे।
396. हे भिक्षु ध्यान करो, प्रमाद में मत पड़ो। तुम्हारा चित्त पाँच प्रकार के कामभोगों के चक्कर में मत पड़ो। प्रमत्त होकर मत लोहे के गोले को निगलो। हाय, यह दुःख कहकर जलते हुए तुम्हें कहीं क्रंदन न करना पड़े।
397. प्रज्ञाविहीन पुरुष का ध्यान नहीं होता, ध्यान न रखनेवाले को प्रज्ञा नहीं होती। जिसके पास ध्यान और प्रज्ञा दोनों हैं, वही निर्वाण के समीप होता है।
398. किसी शून्यागार में प्रवेश करके कोई शांत-चित्त साधक जब सम्यक् रूप से धर्मानुपश्यना करता है, तब उसे लोकोत्तर सुख प्राप्त होता है (जो कि सामान्य मानवीय लोकीय सुखों से परे होता है।)
399. जैसे जूही अपने कुम्हलाए हुए फूलों को छोड़ देती है, वैसे ही हे भिक्षुओं, तुम राग और द्वेष को छोड़ दो।
400. जो अपने आपको स्वयं प्रेरित करे, अपना परीक्षण स्वयं करे, वह अपने द्वारा रक्षित, स्मृतिमान भिक्षु सुखपूर्वक करेगा।

401. व्यक्ति स्वयं अपना स्वामी है, स्वयं ही उसकी अपनी गति है, इसलिए अपने आपको संयत करे, वैसे ही जैसे कि अच्छे घोड़ों का व्यापारी अपने घोड़ों को करता है।
402. बुद्ध के शासन में प्रसन्न रहनेवाला प्रमोदबहुल भिक्षु सभी संस्कारों के उपशमन से प्राप्त होनेवाले सुखमय निर्वाण को प्राप्त करे।
403. हे ब्राह्मण, तृष्णारूपी स्रोत को काट दे, पराक्रम कर कामनाओं को दूर कर। संस्कारों को क्षय को जानकर, हे ब्राह्मण, तू निर्वाण को जाननेवाला हो जा।
404. जब कोई ब्राह्मण सारे धर्मों में पारंगत हो जाता है, तब उस जानकार के सभी बंधन नष्ट हो जाते हैं।
405. जिसके पार (भीतर के छह आयतन—आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन) अपार (बाहर के छह आयतन—रूप, शब्द, गंध, स्पर्श, स्पर्शव्य और धर्म) या पार-अपार (ये दोनों ही अर्थात् मैं और मेरे का भाव) नहीं हैं, जो निर्भय और अनासक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
406. जो ध्यानी, विमल, आसनबद्ध, स्थिर, कृतकृत्य और आश्रवरहित हो, जिसने उत्तम निर्वाण को पा लिया हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
407. दिन में सूर्य तपता है, रात में चंद्रमा भासता है, कवच पहनकर क्षत्रिय चमकता है। ध्यान करता हुआ ब्राह्मण चमकता है, और सारे रात-दिन बुद्ध अपने तेज से चमकते हैं।
408. ब्राह्मण वह कहलाता है, जिसने पापों को बहा दिया, श्रमण वह है जिसकी चर्या समताहूर्ण है और प्रव्रजित वह कहलाता है, जिसने अपने चित्त के मैल दूर कर लिए।
409. ब्राह्मण (निष्पाप) पर प्रहार नहीं करना चाहिए और ब्राह्मण को भी उस पर प्रहार करनेवाले पर कोप नहीं करना चाहिए। धिक्कार है ब्राह्मण की हत्या करनेवाले पर और उससे भी अधिक धिक्कार है उस पर, जो उसके लिए कोप करता है।
410. ब्राह्मण के लिए यह कम श्रेयस्कर नहीं होता है जब वह मन से पिरयों को निकाल देता है। जहाँ-जहाँ मन हिंसा से टलता है, वहाँ-वहाँ दुःख शांत होता है।
411. जो शरीर से, वाणी से और मन से दुष्कर्म नहीं करता, जो तीनों क्षेत्रों में संयमयुक्त है, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
412. जिस किसी से सम्यक् संबुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म को जाने, उसे वैसे ही सत्कारपूर्वक नमस्कार करे जैसे अग्निहोत्र को ब्राह्मण नमस्कार करता है।
413. न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से ही ब्राह्मण होता है। जिसमें सत्य (सोलह प्राकर से प्रतिवेधन किए हुए चार आर्य सत्य) और (नौ प्रकार के लोकोत्तर) धर्म हैं, वही पवित्र है और वही ब्राह्मण है।
414. अरे दुष्प्रज्ञ, जटाओं से तेरा क्या बनेगा? मृगचर्म धारण करने से तेरा क्या लाभ होगा? भीतर तो तेरा चित्त गहन मलीनता से भरा है। बाहर-बाहर से तू इस शरीर को क्या

रगड़ता-धोता है?

415. जो फटे चीथड़ों को धारण करता है, जो कृश है, जिसके शरीर की सभी नसें दिखाई पड़ती हैं और जो वन में एकाकी ध्यान करनेवाला है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
416. यदि वह परिग्रही (आसक्ति युक्त) है और भोगवादी है तो ब्राह्मणी माता के गर्भ से उत्पन्न होने पर भी उसे मैं ब्राह्मण नहीं कहता। जो अपरिग्रही है और अनासक्त है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
417. जो सारे बंधनों के काटकर भय नहीं खाता है, जो तृष्णा एवं संयोजन के पार चला गया हो और जिसे संसार में आसक्ति नहीं है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
418. जो क्रोध, तृष्णा, बासठ प्रकार की दृष्टियों को काटकर अविद्यारूपी जुए को उतार फेंक बुद्ध हुआ, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
419. जो चित्त को बिना दूषित किए गाली, वध और बंधन को सह लेता है, सहन-शक्ति ही जिसकी सेना है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
420. जो अक्रोधी, शीलवान, तृष्णा के न रहने से निरभिमानी है, छहों इंद्रियों का दमन कर लेने से संयमी और अंतिम शरीरधारी है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
421. पद्म-पत्र पर जल और सुई के सिरे पर सरसों के दाने के समान जो कामभोगों में लिप्त नहीं होता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
422. जो यहीं इसी लोक में अपने दुःख के क्षय को प्रज्ञापूर्वक जान लेता है, जिसने अपना बोझ उतार फेंका है, और जो आसक्ति रहित है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
423. गहन प्रज्ञावाले, मेधावी, मार्ग-अमार्ग के पंडित, उत्तम निर्वाण को प्राप्त हुए व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
424. जो गृहस्थों तथा गृह-त्यागियों दोनों में लिप्त नहीं होता है, जो बिना ठौर ठिकानों के घूमनेवाला और अल्पेच्छा है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
425. चर और अचर सभी प्राणियों के प्रति जिसने दंड त्याग दिया है (हिंसा त्याग दी है), जो न किसी की हत्या करता है, न हत्या करवाता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
426. जो विरोधियों के बीच अविरोधी बनकर रहता है, दंडधारियों के बीच शांति से रहता है, परिग्रह करनेवालों में अपरिग्रही होकर रहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
427. जिसके चित्त से राग, द्वेष, अभिमान और डाह ऐसे ही गिर पड़े हैं, जैसे सुई के सिरे से सरसों के दाने, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
428. जो इस प्रकार की अकर्कश, सार्थक, सच्ची वाणी को बोले जिससे किसी को पीड़ा न पहुँचे, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
429. जो यहाँ इस लोक में लंबी या छोटी, मोटी या महीन, सुंदर या असुंदर वस्तु बिना दिए नहीं लेता, अर्थात् उसकी चोरी नहीं करता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

430. जिसके मन में लोक या परलोक के संबंध में कोई आशा-आकांक्षा नहीं रह गई है, जो सभी प्रकार की आशाओं-आकांक्षाओं और आसक्तियों से मुक्त हो चुका है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
431. जिसको तृष्णा नहीं है, जो सबकुछ जानकर संदेहरहित हो गया है, जिसने डुबकी लगाकर निर्वाण प्राप्त कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
432. जो इस लोक में पुण्य और पाप दोनों के प्रति आसक्ति से परे चला गया है, जो शोकरहित, विमल और शुद्ध है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
433. जो चंद्रमा के समान विमल, शुद्ध, निखरा हुआ और मलरहित है, और जिसकी भव तृष्णा पूरी तरह क्षीण हो गई है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
434. जिसने इस दुर्गम संसार के जन्म-मरण के चक्कर में डालनेवाले मोहरूपी उलटे मार्ग को त्याग दिया है, जो तरा हुआ, पार गया हुआ, ध्यानी, स्थिर, संदेहरहित और बिना उपादान के निर्वाणलाभी हो गया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
435. जो इस लोक में काम भोगों का परित्याग कर घर-बार छोड़कर प्रवर्जित हो जाए और जिसका कामभाव पूरी तरह क्षीण हो गया हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
436. जो इस लोक में तृष्णा का परित्याग कर घर-बार छोड़कर प्रवर्जित हो जाए और जिसकी भवतृष्णा पूरी तरह क्षीण हो गई हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
437. जो मानसिक बंधन और दैवी बंधन से परे चला गया है, जो सब प्रकार के बंधनों से विमुक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
438. जो रति और अरति को छोड़कर शांत और क्लेशरहित हो गया है, और जो सारे लोकों को जीतकर वीर बना है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
439. जो प्राणियों की च्युति और उत्पत्ति को पूरी तरह से जानता है, और जो अनासक्त, अच्छी गतिवाला और बोधिसंपन्न है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
440. जिसकी गति देव, गंधर्व और मनुष्य नहीं जानते, और क्षीणाश्रव अरहंत है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
441. जिसके आगे, पीछे और बीच में कुछ नहीं है अर्थात् जो अतीत, अनागत और वर्तमान की सभी कामनाओं से मुक्त है, जो अकिंचन और अपरिग्रही है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
442. जो श्रेष्ठ, प्रवर, वीर, महर्षि, विजेता, अकंप्य, स्नातक और बुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
443. जो अपने पूर्व-निवास को जानता है और स्वर्ग तथा नर्क को देख लेता है, और फिर जन्म के क्षय को प्राप्त हुआ, अपनी अभिज्ञाओं को पूर्ण किया हुआ मुनि है और जिसने जो कुछ करना था वह सब कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
444. जो दूसरों के अवगुणों की चर्चा करता है, वह अपने अवगुण प्रकट करता है।

445. मनुष्य जन्म से ही न तो मस्तक पर तिलक लगाकर आता है, न यज्ञोपवीत धारण करके। जो सत्कार्य करे, वह द्विज है और जो कुकर्म करता है, वह नीच।
446. पानी में यदि गंदगी हो तो मनुष्य उसमें अपना प्रतिबिंब नहीं देख सकता, इसी प्रकार जिसका चित्त आलस्य से पूर्ण होता है, वह अपना हित नहीं समझ सकता तो दूसरों के हित भला क्या समझेगा।
447. अविद्या इस बात की कि शरीर के अंदर अवचेतन मन में लगातार कैसे राग और द्वेष की प्रक्रिया चल रही है और कैसे हम हर क्षण राग और द्वेष के गहरे संखार बनाए जा रहे हैं, और भव चक्र के जाल में फँसते ही जा रहे हैं। अविद्या के कारण, संखार के कारण, विज्ञान के कारण नाम, रूप (चित्त और शरीर), नाम-रूप के कारण छह इंद्रियाँ, छह इंद्रियों के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान (गहन आसक्ति), उपादान के कारण भव, भव के कारण जाति (जन्म), जाति (जन्म) के कारण बुढ़ापा, मृत्यु, शोक करना, रोना-पीटना, दुःखित, बेचैन व परेशान होना होता है। इस प्रकार सारे-के-सारे दुःख समुदाय का उदय होता है। इसे ही दुःख-चक्र या भव-चक्र कहते हैं। यही संसार चक्र है। इसमें कहीं मैं, मेरा, आत्मा कहने को कुछ नहीं है, इसलिए इसे अनात्मवाद का सिद्धांत भी कहा जाता है। (यहाँ संखार का मतलब है—दुःख मिलने पर शरीर में जो तरंगें उत्पन्न हुई हैं वे दुःखद या सुखद या फिर न सुखद, न दुःखद संवेदनाओं में बदल जाती हैं और उन इन संवेदनाओं के उत्पन्न होते ही मानस का चौथा हिस्सा, जिसे उन दिनों की भाषा में संखार कहा जाता था अपना काम शुरू करता है।)
448. अविद्या के पूर्णतया निरोध करने से संखारों का निरोध हो जाता है, संखारों के निरोध से विज्ञान का निरोध हो जाता है, विज्ञान के निरोध से नाम रूप (चित्त और शरीर) का निरोध हो जाता है, नाम रूप के निरोध से छह इंद्रियों का निरोध हो जाता है। छह इंद्रियों के निरोध से स्पर्श का निरोध हो जाता है, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध हो जाता है। वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध हो जाता है। तृष्णा के निरोध से उपादान (गहरी आसक्ति) का निरोध हो जाता है। उपादान (गहरी आसक्ति) के निरोध से भव का निरोध हो जाता है। भव के निरोध से जन्म का निरोध हो जाता है। जन्म के निरोध से बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, रोना-पीटना, बेचैनी और परेशानी का निरोध हो जाता है। प्रतिलोम संसार-चक्र या भव-चक्र से धम्मचक्र में परिवर्तन है। अब सवाल ये उठता है कि भव-चक्र को धम्मचक्र में परिवर्तित किया कैसे जाए? जब तक जीवन है, इंद्रियों का अपने विषयों से टकराव रहेगा ही। जब-जब जन्म होगा, शरीर के साथ इंद्रियाँ होंगी ही। इंद्रियों को कितना ही रोका जाए, उनका अपने-अपने विषयों से टकराव होगा ही। पूरे विश्व में हम कहीं भी चले जाएँ, कोई जगह ऐसी नहीं है जहाँ इंद्रियों के विषय न हों। और अगर थोड़ी देर के लिए कोई ऐसी जगह मिल भी जाए

तो भी मन तो हमेशा हमारे शरीर के साथ रहेगा ही और मन के अपने विषय हैं, जिससे वह लगातार प्रतिक्रिया करता रहता है। कुछ अच्छा लगा तो उसके प्रति राग जगाता है, कुछ बुरा लगा तो उसके प्रति द्वेष जगाता है।

449. जब कोई संखार ही नहीं रहेंगे तो नया विज्ञान नहीं बनेगा, नया विज्ञान नहीं बनेगा तो नया रूप (शरीर और चित्त) नहीं बनेगा, नया नाम रूप नहीं बनेगा तो छह इंद्रियाँ नहीं बनेंगी तो उनका विषयों से टकराव नहीं होगा, इंद्रियाँ का विषयों से टकराव नहीं होगा, तो वेदना नहीं उत्पन्न होगी, जब वेदना नहीं उत्पन्न होगी तो उस वेदना के प्रति तृष्णा भी नहीं जगेगी। जब तृष्णा भी नहीं जगेगी तो उस तृष्णा के प्रति आसक्ति भी नहीं पैदा होगी, अगर आसक्ति भी नहीं पैदा होगी तो भव का निर्माण भी नहीं होगा। भव का निर्माण भी नहीं होगा तो जन्म भी नहीं होगा। जब जन्म भी नहीं होगा तो बीमारियाँ, बुढ़ापा, मृत्यु, प्रियजनों से बिछुड़ाव, प्रिय लोगों से मिलाप नहीं होगा, अनचाही होने और मनचाही न होने का दुःख नहीं होगा और इस तरह सारे दुःखों से मुक्ति हो जाएगी।
450. किसान धरती में बीज तभी बोता है, जब उसमें धरती की शक्ति पर श्रद्धा होती है। श्रद्धा ही शक्तिशाली बल है। श्रद्धा ही पाप को धोती है। धर्म की उत्पत्ति का कारण श्रद्धा है, अतः उसे अंकुरित करो। अब तुम श्रद्धा से सज्जित होकर शील की रक्षा करो।
451. साधक को अपने सारे कर्म खुले रखने चाहिए, जिससे वह निर्दोष बन जाता है। कपट आदि दोषों का त्याग करो। आजीविका शुद्ध रखो। ब्रह्मचर्य और शील के सहारे कल्याण की सब क्रियाएँ पूर्ण होती हैं। मोक्ष का रहस्य वैराग्य है। वैराग्य का रहस्य आत्मा की स्वतः प्रेरणा है। आत्म-प्रेरणा का रहस्य ज्ञान का दर्शन है। ज्ञान का रहस्य समाधि है। समाधि का फल शारीरिक और मानसिक सुख है। वही परम सुख उपजाता है। परम सुख शांति का मूल है। शांति से सब प्रकार का आनंद मिलता है। आनंदमयी स्थिति शील से मिलती है, इसलिए शील प्रधान है। लगातार अभ्यास का नाम शील है। अतः चपल इंद्रियों का निग्रह कर उन्हें विषयों से विमुख करना चाहिए।
452. इंद्रियनिग्रह के लिए भोजन सीमा में करना चाहिए। अधिक मात्रा में ग्रहण किया भोजन नियमित कार्य में बाधा डालता है। उससे आलस्य और नींद आती है। बहुत कम भोजन से भी पूरी शक्ति नहीं मिलती, इसलिए अपनी शक्ति को देखते हुए भोजन की मात्रा निश्चित करनी चाहिए। रात के प्रथम पहर में योगाभ्यास करो। दूसरे पहर में शय्या पर विश्राम करो। तीसरे पहर में उठकर योग साधना में लग जाओ। सब काम करते हुए अपनी स्मृति पर नियंत्रण रखो, ताकि वह लक्ष्य पर टिकी रहे। जिसने स्मृति का कवच धारण कर लिया, उसे दोषों का शिकार नहीं बनना पड़ता। स्मृति के बिना आर्य-सत्य प्राप्त नहीं होता और आर्य-सत्य के बिना उत्तम रास्ता नहीं मिलता।

इसलिए जो व्यक्ति पवित्र हृदय से एकांत में रहता है, वह प्रज्ञा रस का अमृतपान करता है।

453. बुरे का चिंतन छोड़कर सदा शुभ चिंतन में ही रत रहना चाहिए। बुरे विचार मन की शक्ति का नाश कर डालते हैं। जीवन लोक के परस्पर संबंधों पर विचार करो। स्वजनों का मोह छोड़ो, क्योंकि उनकी चिंता से मन की शांति नष्ट होती है। इस दुःखमय संसार में अपना मन आसक्त न रखो। काल छिपे हुए बाघ के समान विश्वासी पर झपटता है। संसार में कोई भी मृत्यु से न बचा है, न बचेगा। जैसे रोग को दूर करने के लिए औषधि का सेवन किया जाता है, वैसे ही बुरे विचारों से बचने के लिए अच्छे भावों का चिंतन करना चाहिए।
454. जिस प्रकार बादल एकत्रित होकर फिर अलग हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राणियों का संयोग और वियोग है, ऐसा मैं समझता हूँ।
455. आत्मवान संयमी पुरुषों को न तो विषयों में आसक्ति होती है और न वे विषयों के लिए युक्ति करते हैं।
456. जिसने अपने को जीत लिया है उसी को प्रव्रजित होना उचित है, न कि चंचलात्मा अजितेंद्रिय व्यक्ति का।
457. अधिक धन संपन्न होने पर भी जो असंतुष्ट रहता है, वह सदा निर्धन है। धन से रहित होने पर भी जो संतुष्ट है, वह सदा धनी है।
458. न तो आयु प्रमाण है, न वंश। संसार में कोई भी कहीं भी श्रेष्ठता प्राप्त कर सकता है।
459. यदि मनुष्य को पता चल जाए कि ईर्ष्या का फल कैसा होता है तो वह निश्चय ही राजा शिवि के समान अपने अंग काटकर दे देगा।
460. जो व्यक्ति क्रोधी है, बैर रखनेवाला है, नफरत करनेवाला है, मिथ्या दृष्टिवाला और मायावी है, उसे नीच समझना चाहिए।
461. जो व्यक्ति योनिज या अंडज किसी भी प्राणी की हिंसा करता है, जिसको जीव-प्राणियों के प्रति दया नहीं है, उसे नीच समझना चाहिए।
462. ऐसा कोई छोटे से भी छोटा काम न करें, जिसके लिए दूसरे जानकार लोग उसे दोष दें और इस प्रकार मैत्री करें कि सभी प्राणी सुखी हों, कुशल हों और स्वयं सुखी हों।
463. जैसे कुम्हार द्वारा बनाए मिट्टी के बरतन सभी टूट जानेवाले हैं, ऐसे ही प्राणियों का जीवन है।
464. सभी दंड से डरते हैं, सभी को मरने का डर लगता है, इसलिए सभी को अपने जैसा समझकर न दूसरों को मारें, न मरवाएँ।
465. जो व्यक्ति यह सोचता है कि मुझे गाली दी, मुझे मारा, मुझे हराया, मुझे लूट लिया, उस व्यक्ति का वैरभाव कभी शांत नहीं होता है। लेकिन जो व्यक्ति इस तरह नहीं सोचता है, न विचार करता है, उसका मन शांत होता है।

466. एक दूसरे से छल न करें, कभी किसी का अपमान न करें, वैमनस्य या विरोधस्वरूप किसी के दुःख की इच्छा न करें।
467. जिस प्रकार शरीर में व्याप्त सर्प के विष को औषधि द्वारा शांत कर दें, उसी प्रकार जो भिक्षु उत्पन्न हुए क्रोध को शांत कर देता है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है।
468. जिस प्रकार तालाब में प्रवेश कर कमल के पुष्प को तोड़े जाते हैं, उसी प्रकार जो भिक्षु उत्पन्न हुए संपूर्ण राग को नष्ट कर देता है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है।
469. जिस प्रकार तेज बहनेवाली नदी को सुखा दें, उसी प्रकार जो भिक्षु उत्पन्न हुए अभिमान को नष्ट कर देता है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है।
470. जिस प्रकार बहुत ही कमजोर नरकट के पुल को बड़ी बाढ़ बहा ले जाए, उसी प्रकार जो भिक्षु संसार में किसी प्रकार के सार को नहीं प्राप्त कर पाया है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है।
471. जिस भिक्षु के भीतर क्रोध नहीं है और जो पाप-पुण्य से रहित हो गया है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है।
472. जिस भिक्षु के वितर्क नष्ट हो गए हैं और जिसका चित्त पूर्ण रूप से संयत हो गया है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है।
473. जो भिक्षु न अतिशीघ्रगामी है और न अति मंदगामी, जिसने सारे सांसारिक प्रपंचों को पार कर लिया है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है।
474. जैसे मैं हूँ, वैसे ही वे हैं, और जैसे वे हैं, वैसा ही मैं हूँ। इस प्रकार सबको अपने जैसा समझकर न किसी को मारें, न मारने को प्रेरित करें।
475. जहाँ मन हिंसा से मुड़ता है, वहाँ दुःख अवश्य ही शांत हो जाता है।
476. अपनी प्राण-रक्षा के लिए भी जान-बूझकर किसी प्राणी का वध न करें।
477. मनुष्य यह विचार किया करता है कि मुझे जीने की इच्छा है मरने की नहीं, सुख की इच्छा है दुःख की नहीं। यदि मैं अपनी ही तरह सुख की इच्छा करनेवाले प्राणी को मार डालूँ तो क्या यह बात उसे अच्छी लगेगी? इसलिए मनुष्य को प्राणीघात से स्वयं तो विरत हो ही जाना चाहिए। उसे दूसरों को भी हिंसा से विरत कराने का प्रयत्न करना चाहिए।
478. वैरियों के प्रति वैररहित होकर, अहा! हम कैसा आनंदमय जीवन बिता रहे हैं, वैरी मनुष्यों के बीच अवैरी होकर विहार कर रहे हैं!

479. पहले तीन ही रोग थे—इच्छा, क्षुधा और बुढ़ापा। पशु हिंसा के बढ़ते-बढ़ते वे अट्टानवे हो गए। ये याजक, ये पुरोहित, निर्दोष पशुओं का वध कराते हैं, धर्म का ध्वंस करते हैं। यज्ञ के नाम पर की गई यह पशु-हिंसा निश्चय ही निंदित और नीच कर्म है। प्राचीन पंडितों ने ऐसे याजकों की निंदा की है।

480. भगवान् गौतम बुद्ध के अनुसार क्रोध और क्षोभ उत्पन्न होने पर इससे पाँच प्रकार से छुटकारा पाया जा सकता है :—

मैत्री से : जिस आदमी के प्रति क्रोध या क्षोभ हो, उसके प्रति मैत्री की भावना करो।

481. **करुणा से :** जिस आदमी के प्रति क्रोध या क्षोभ हो, उसके प्रति करुणा की भावना करो।

482. **मुदिता :** जिस आदमी के प्रति क्रोध या क्षोभ हो, उसके प्रति मुदिता की भावना करो।

483. **उपेक्षा से :** जिस आदमी के प्रति क्रोध या क्षोभ हो, उसके प्रति उपेक्षा की भावना करो।

484. **कर्मों के स्वामित्व की भावना से :** जिस आदमी के प्रति क्रोध या क्षोभ हो, उसके बारे में ऐसा सोचो कि वह जो कर्म करता है, उसका फल अच्छा हो या बुरा, उसी को भोगना पड़ेगा।

485. भगवान् गौतम बुद्ध ने क्रोध करने से सात अनर्थ बताए हैं। उनके अनुसार जो स्त्री या पुरुष क्रोध करता है, उसके शत्रु को इन सात बातों की प्रसन्नता होती है :—

मनुष्य चाहता है कि उसका शत्रु कुरूप हो जाए, क्योंकि कोई भी यह पसंद नहीं करता है कि उसका शत्रु स्वरूपवान हो, सुंदर हो। जब उसे क्रोध आता है, तो भले ही उसने मल-मलकर स्नान किया हो, सुगंध लगाई हो, बाल और दाढ़ी ठीक ढंग से बनाई हो, उसके कपड़े स्वच्छ हों, फिर भी वह कुरूप लगता है क्योंकि उसकी आँखों में क्रोध भरा हुआ है। इससे उसके शत्रु को प्रसन्नता होती है।

486. मनुष्य चाहता है कि उसका शत्रु पीड़ा पाए। क्योंकि कोई आदमी यह पसंद नहीं करता कि उसका शत्रु आराम से रहे। जब उसे क्रोध आता है तो भले ही वह बढ़िया बिस्तर पर पड़ा हो, बढ़िया कंबल उसके पास हो, मृगचर्म ओढ़े हो, सिर और पैर के नीचे बढ़िया तकिए लगे हों, फिर भी वह पीड़ा का अनुभव करता है क्योंकि उसकी आँखों में क्रोध भरा हुआ है। इससे उसके शत्रु को प्रसन्नता होती है।

487. मनुष्य चाहता है कि उसका शत्रु संपन्न न रहे। क्योंकि अपने शत्रु की संपन्नता किसी को अच्छी नहीं लगती। मनुष्य जब क्रोध का शिकार होता है, तब वह बुरे को अच्छा और अच्छे को बुरा समझता है। इस तरह करते रहने से उसे हानि और कष्ट भोगना पड़ता है। उसकी संपन्नता जाती रहती है। इससे उसके शत्रु को प्रसन्नता होती है।

488. मनुष्य चाहता है कि उसका शत्रु धनवान न हो। क्योंकि कोई यह पसंद नहीं करता कि उसका शत्रु पैसेवाला हो। जब उसे क्रोध आता है तो भले ही उसने अपने श्रम से संपत्ति जुटाई हो, अपनी भुजाओं से, अपने श्रम के बल पर पसीने से, ईमानदारी से पैसा इकट्ठा किया हो, वह गलत काम करने लगता है, जिससे उसे जुर्माना आदि करना पड़ता है। उसकी संपत्ति नष्ट हो जाती है। इससे उसके शत्रु को प्रसन्नता होती है।
489. मनुष्य चाहता है कि उसके शत्रु की नामवरी न हो। क्योंकि कोई आदमी यह पसंद नहीं करता कि उसके शत्रु की ख्याति हो। जब उसे क्रोध आता है तो पहले उसने भले ही अपने अच्छे कामों से नामवरी प्राप्त की हो, अब लोग कहने लगते हैं कि यह तो बड़ा क्रोधी है। उसकी नामवरी मिट जाती है। इससे उसके शत्रु को प्रसन्नता होती है।
490. मनुष्य चाहता है कि उसका शत्रु मित्रहीन रहे, उसका कोई मित्र न हो। क्योंकि कोई मनुष्य नहीं चाहता कि उसके शत्रु का कोई मित्र हो। जब उसे क्रोध आता है तो उसके मित्र, उसके साथी, उसके सगे-संबंधी उससे दूर रहने लगते हैं, क्योंकि वह क्रोध का शिकार होता है। इससे उसके शत्रु को प्रसन्नता होती है।
491. मनुष्य चाहता है कि मरने पर उसके शत्रु को सुगति न मिले उलटे नरक में बुरा स्थान मिले। क्योंकि कोई शत्रु नहीं चाहता कि उसके शत्रु को अच्छा स्थान मिले। जब मनुष्य को क्रोध आता है तो वह मन, वचन, कर्म से तरह-तरह के गलत काम करता है। इससे मरने पर वह नरक में जाता है। इससे उसके शत्रु को प्रसन्नता होती है।
492. क्रोधी आदमी किसी बात का ठीक अर्थ नहीं समझता। वह अंधकार में रहता है। वह अपना होश खो बैठता है। वह मुँह से कुछ भी बक देता है। उसे किसी बात की शर्म नहीं रहती। वह किसी की भी हत्या कर बैठता है, फिर वह साधारण आदमी हो या साधु हो, माता-पिता हों या और कोई, वह आत्महत्या तक कर बैठता है।
493. क्रोध से मनुष्य का सर्वनाश होता है। जो लोग क्रोध का त्याग कर देते हैं, काम, क्रोध, ईर्ष्या से अपने को मुक्त कर लेते हैं, वे निर्वाण पाते हैं।
494. सत्य को छोड़कर जो असत्य बोलता है, धर्म का उल्लंघन करता है, परलोक की जिसे चिंता नहीं है, वह आदमी बड़े-से-बड़ा पाप कर सकता है।
495. जो मनुष्य शास्त्र की बातें तो बहुत कहता है, पर उसके अनुसार आचरण नहीं करता, वह वैसा ही है जैसा दूसरों की गाँँ गिननेवाला ग्वाला। वह भिक्षु बनने लायक नहीं।
496. देखने में फूल खूब सुंदर हो, पर उसमें खुशबू न हो तो उसका होना, न होना बराबर है। उसी तरह जो आदमी बोलता तो बहुत मीठा है, पर जैसा बोलता है वैसा करता नहीं, उसकी मीठी वाणी व्यर्थ है।
497. जिस तरह खुशबूवाले सुंदर फूल का जीना सार्थक है, उसी तरह जो जैसा कहता है वैसा करता है, उसकी वाणी सफल होती है।

सत्य के बारे में भगवान् बुद्ध के विचार इस प्रकार हैं :—

498. असत्यवादी नरकगामी होते हैं और वे भी नरक में जाते हैं, जो करके 'नहीं किया' कहते हैं।
499. जो मिथ्याभाषी है, वह मुंडित होने मात्र से श्रमण नहीं हो जाता।
500. जिसे जान-बूझकर झूठ बोलने में लज्जा नहीं, उसका साधुपना औंधे घड़े के समान है। साधुता की एक बूँद भी उसके हृदय-घट के अंदर नहीं है।
501. जिसे जान-बूझकर झूठ बोलने में लज्जा नहीं, वह कोई भी पाप कर सकता है, इसलिए तू यह हृदय में अंकित कर ले कि मैं हँसी-मजाक में भी कभी असत्य नहीं बोलूँगा।
502. जितनी हानि शत्रु शत्रु की और वैरी वैरी की करता है, मिथ्या मार्ग का अनुगमन करनेवाला चित्त उससे कहीं अधिक हानि पहुँचाता है।
503. सभा में, परिषद् में अथवा एकांत में किसी से झूठ न बोलें। झूठ बोलने के लिए दूसरों को प्रेरित न करें और न झूठ बोलनेवाले को प्रोत्साहन दें। असत्य का सर्वांश में परित्याग कर देना चाहिए।
504. अगर कोई हमारे विरुद्ध झूठी गवाही देता है तो उससे हमें अपना भारी नुकसान हुआ मालूम होता है। इसी तरह अगर असत्य भाषण से मैं दूसरों की हानि करूँ तो क्या वह उसे अच्छा लगेगा? ऐसा विचार करके मनुष्य को असत्य भाषण का परित्याग कर देना चाहिए और दूसरों को भी सत्य बोलने का उपदेश करना चाहिए। सदा ईमानदारी की सराहना करनी चाहिए।
505. असत्य का कदापि सहारा न लें। न्यायाधीश ने गवाही देने के लिए बुलाया हो तो वहाँ भी जो देखा है, उसी को कहें कि 'मैंने देखा है', और जो बात नहीं देखी, उसे 'नहीं देखी' ही कहें।
506. सत्यवाणी ही अमृतवाणी है, सत्यवाणी ही सनातन धर्म है। सत्य, सदर्थ और सधर्म पर संतजन सदैव दृढ़ रहते हैं।
507. सत्य एक ही है, दूसरा नहीं। सत्य के लिए बुद्धिमान विवाद नहीं करते।
508. ये लोग भी कैसे हैं। सांप्रदायिक मतों में पड़कर अनेक तरह की दलीलें पेश करते हैं और सत्य और असत्य दोनों का ही प्रतिपादन कर देते हैं, अरे! सत्य तो जगत् में एक ही है, अनेक नहीं।
509. जो मुनि है, वह केवल सत्य को ही पकड़कर और दूसरी सब वस्तुओं को छोड़कर संसार-सागर के तीर पर आ जाता है। उसी सत्यनिष्ठ मुनि को हम शांत कहते हैं।
510. जो लोग ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते और जवानी में धन नहीं जुटाते, वे उसी तरह नष्ट हो जाते हैं, जिस तरह मछलियों से रहित तालाब में बूढ़े क्रौंच पक्षी।

511. जो लोग ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते और जवानी में धन नहीं जुटाते, वे धरती पर उसी तरह गिर पड़ते हैं, जैसे टूटे हुए मकान। पुरानी बातें कह-कहकर वे पछताते रहते हैं।
512. मित्र और अमित्र की पहचान बताते हुए भगवान् बुद्ध कहते हैं कि पराया धन हरनेवाले, बातूनी, खुशामदी और धन के नाश में सहायता करनेवाले मित्रों को अमित्र जानना चाहिए। मित्र उसी को जानना चाहिए जो उपकारी हो, सुख-दुःख में हमसे समान व्यवहार करता हो, हितवादी हो और अनुकंपा करनेवाला हो। मित्र और अमित्र की पहचान निम्न बिंदुओं पर हो सकती है—
513. जो मद्यपानादि के समय या आँखों के सामने प्रिय बन जाता है, वह सच्चा मित्र नहीं। जो काम निकल जाने के बाद भी मित्र बना रहता है, वही मित्र है।
514. इन चारों को मित्र के रूप में अमित्र समझना चाहिए :—
1. दूसरों का धन हरण करनेवाला।
 2. कोरी बातें बनानेवाला।
 3. सदा मीठी-मीठी चाटुकारी करनेवाला।
 4. हानिकारक कामों में सहायता देनेवाला।
515. जो बुरे काम में अनुमति देता है, सामने प्रशंसा करता है, पीठ पीछे निंदा करता है, वह मित्र नहीं, अमित्र है।
516. जो मद्यपान जैसे प्रमाद के कामों में साथ और आवारागर्दी में प्रोत्साहन देता है और कुमार्ग पर ले जाता है, वह मित्र नहीं, अमित्र है। ऐसे शत्रु-रूपी मित्र को खतरनाक रास्ते की भाँति छोड़ देना चाहिए।
517. वास्तविक सुहृदय इन चार प्रकार के मित्रों को समझना चाहिए—

1. 1. सच्चा उपकारी, 2. सुख-दुःख में समान साथ देनेवाला, 3. अर्थप्राप्ति का उपाय बतानेवाला और 4. सदा अनुकंपा करनेवाला।
2. जो प्रमत्त अर्थात् भूल करनेवाले की और उसकी संपत्ति की रक्षा करता है, भयभीत को शरण देता है और सदा अपने मित्र का लाभ दृष्टि में रखता है, उसे उपकारी सुहृदयी समझना चाहिए।
3. जो अपना गुप्त भेद मित्र को बतला देता है, मित्र की गुप्त बात को गुप्त रखता है, विपत्ति में मित्र का साथ देता है और उसके लिए अपने प्राण भी होम करने को तैयार रहता है, उसे ही सच्चा सुहृदय समझना चाहिए।
4. जो पाप का निवारण करता है, पुण्य का प्रवेश कराता है और सुगति का मार्ग बताता है, वही 'अर्थ-आख्यायी', अर्थात् अर्थ प्राप्ति का उपाय बतलानेवाला सच्चा सुहृदय है।
5. जो मित्र की उन्नति देखकर प्रसन्न होता है, मित्र की निंदा करनेवाले को रोकता है और प्रशंसा करने पर प्रशंसा करता है, वही अनुकंपक मित्र है। ऐसे मित्रों की सत्कारपूर्वक माता-पिता और पुत्र की भाँति सेवा करनी चाहिए।
6. जगत् में विचरण करते-करते अपने अनुरूप यदि कोई सत्पुरुष न मिले तो दृढ़ता के साथ अकेले ही विचारें, मूढ़ के साथ मित्रता नहीं निभ सकती।
7. जो छिद्रान्वेषण किया करता है और मित्रता टूट जाने के भय से सावधानी बरतता है, वह मित्र नहीं है। पिता के कंधे पर बैठकर जिस प्रकार पुत्र विश्वस्त रीति से सोता है, उसी प्रकार जिसके साथ विश्वासपूर्वक बरताव किया जा सके और दूसरे जिसे फोड़ न सकें, वही सच्चा मित्र है।
8. अकेले विचरना अच्छा है, किंतु मूर्ख मित्र का सहवास अच्छा नहीं।
9. यदि कोई होशियार, सुमार्ग पर चलनेवाला और धैर्यवान साथी मिल जाए तो सारी विघ्न-बाधाओं को झेलते हुए भी उसके साथ रहना चाहिए।
10. बौद्ध धर्म निर्वाण का अर्थ बुझ जाने से लगाता है। तृष्णा का बुझ जाना। वासनाओं का शांत हो जाना। तृष्णा और वासना से ही दुःख होता है। दुःखों से पूरी तरह छुटकारे का नाम है—निर्वाण।

भगवान् बुद्ध ने कहा है—'भिक्षुओं! संसार अनादि है। अविद्या और तृष्णा से संचालित होकर प्राणी भटकते फिरते हैं। उनके आदि-अंत का पता नहीं चलता। भवचक्र में पड़ा हुआ प्राणी अनादिकाल से बार-बार जन्मता-मरता आया है।'

11. संसार में बार-बार जन्म लेकर प्रिय के वियोग और अप्रिय के संयोग के कारण रो-रोकर अपार आँसू बहाए हैं। दीर्घकाल तक दुःख का, तीव्र दुःख का अनुभव किया है।

- अब तो सभी संस्कारों से निर्वेद प्राप्त करो, वैराग्य प्राप्त करो, मुक्ति प्राप्त करो।
12. बुद्ध कहते हैं रोगों की जड़ जिघृक्षा है। ग्रहण करने की इच्छा, तृष्णा। सारे दुःखों का मूल संस्कार है। इस तत्त्व को जानकर तृष्णा और संस्कार के नाश से ही मनुष्य निर्वाण पा सकता है।
 13. बुद्ध सलाह देते हैं कि यदि तुम टूटे हुए काँसे की तरह अपने को नीरव, निश्चल या कर्महीन बना लो तो समझो तुमने निर्वाण पा लिया। कारण, कर्मों का आरंभ अब तुम में रहा नहीं और उसके न रहने से जन्म-मरण का चक्कर भी छूट गया।
 14. एक निष्ठाहीन और बुरे दोस्त से जानवरों की अपेक्षा ज्यादा भयभीत होना चाहिए; क्योंकि एक जंगली जानवर सिर्फ आपके शरीर को घाव दे सकता है, लेकिन एक बुरा दोस्त आपके दिमाग में घाव कर जाएगा।
 15. वह व्यक्ति जो 50 लोगों को प्यार करता है, 50 दुःखों से घिरा होता है, जो किसी से भी प्यार नहीं करता है उसे कोई संकट नहीं है।
 16. क्रोधित रहना, किसी और पर फेंकने के इरादे से एक गरम कोयला अपने हाथ में रखने की तरह है, जो तुम्हीं को जलाता है।
 17. आप चाहे कितने भी पवित्र शब्दों को पढ़ या बोल लें, लेकिन जब तक उन पर अमल नहीं करते उसका कोई फायदा नहीं है।
 18. शरीर को स्वस्थ रखना हमारा कर्तव्य है, नहीं तो हम अपने दिमाग को मजबूत एवं स्वच्छ नहीं रख पाएँगे।
 19. अतीत में ध्यान केंद्रित नहीं करना चाहिए, न ही भविष्य के लिए सपना देखना चाहिए, बल्कि अपने मस्तिष्क को वर्तमान क्षण में केंद्रित करना चाहिए।
 20. हर इनसान अपने स्वास्थ्य या बीमारी का लेखक है।
 21. आप अपने मोक्ष पर खुद कार्य करो, दूसरों पर निर्भर मत रहो।
 22. आप अपने गुस्से के लिए दंडित नहीं हुए, आप अपने गुस्से के द्वारा दंडित हुए हो।
 23. हजारों खोखले शब्दों से अच्छा वह एक शब्द है जो शांति लाए।
 24. शक की आदत से भयावह कुछ भी नहीं है। शक लोगों को अलग करता है। यह एक ऐसा जहर है जो मित्रता खतम करता है और अच्छे रिश्तों को तोड़ता है। यह एक काँटा है जो चोटिल करता है, एक तलवार है जो वध करती है।
 25. प्राणी स्वयं अपने कर्मों के स्वामी हैं। वे अपने कर्मों की ही विरासत पाते हैं। अपने कर्मों से ही उत्पन्न होते हैं और अपने कर्मों के बंधन में बँधते हैं। उनके कर्म ही उनके शरणदाता हैं। कर्म जैसे शुभ-अशुभ होंगे, परिणाम भी वैसे ही शुभ-अशुभ होंगे। और उनके अनुसार ही भोग भोगेंगे। जो कुछ हमें भोगना पड़ता है वह हमारे ही किए का फल है।

26. किया हुआ चाहे नया हो या पुराना, उसका फल 'अवश्यमेव भोक्तव्यं।' निष्कर्ष यही कि कर्म करना हमारे वश की बात है। भाग्य हमारे आधीन है। हम जैसा चाहें, वैसा भविष्य बना सकते हैं। कर्म का विवेचन करने पर ज्ञात होता है कि उसके उद्गम के भी तीन स्थान हैं—मन, वचन और कर्म। 'मनसा, वाचा, कर्मणा', मानसिक, वाचिक और कायिक (शारीरिक)।
27. कर्म राग और द्वेष के जनक हैं। हमारे मन की अनचाही होती है तो द्वेष उत्पन्न होता है और मनचाही होती है तो राग। इस राग, द्वेष का प्रभाव हमारे ऊपर पड़ता है। चाहे क्षणिक (अल्पकालिक) हो अथवा दीर्घकालिक, पर पड़ता अवश्य है। बार-बार होने पर इनका प्रभाव संचयी हो जाता है। इस प्रकार उनके प्रति तृष्णा पैदा हो जाती है। और यह तृष्णा संस्कार डालती है। एक उदाहरण से समझें तो हम इन्हें पानी, रेत या पत्थर पर लकीर की उपमा दे सकते हैं। जो संस्कार जितना गंभीर होता है वह उतना ही गहरा प्रभाव डालता है।
28. क्षुधा के समान कोई भी सांसारिक व्याधि नहीं। अन्य रोग तो एक बार चिकित्सा करने से शांत हो जाते हैं, किंतु क्षुधा रोग तो ऐसा है कि उसकी चिकित्सा मनुष्य को प्रतिदिन करनी पड़ती है।
29. उग्रता बनता काम बिगाड़ देती है, जबकि संयम से बिगड़े हुए काम भी बन जाते हैं।
30. जीवन में सफलता के उच्च सोपानों की उपलब्धि तभी होती है, जबकि व्यक्ति पूर्ण उत्साह से परिश्रम करे। श्रमपूर्वक किया गया प्रत्येक कर्म सदैव हितकारी होता है।
31. यहाँ सभी कुछ क्षणभंगुर है। और जो इस क्षणभंगुरता को जान लेता है, उसका यहाँ आना बंद हो जाता है। हम तभी तक यहाँ टटोलते हैं, जब तक हमें यह भ्रांति होती है कि शायद क्षणभंगुर में शाश्वत मिल जाए! शायद सुख में आनंद मिल जाए। शायद प्रेम में प्रार्थना मिल जाए। शायद देह में आत्मा मिल जाए। शायद पदार्थ में परमात्मा मिल जाए। शायद समय में हम उसे खोज लें, जो समय के पार है। पर जो नहीं होना, वह नहीं होना। जो नहीं होता, वह नहीं हो सकता है।
32. साधुता विकाररहित और निरपेक्ष दृष्टि से देखती है। वहाँ प्राणिमात्र में किसी प्रकार के भेद के लिए कोई स्थान नहीं होता।
33. धर्म को सब जानते हैं पर उस तक वास्तव में पहुँचने के लिए प्रयत्न नहीं करते। उसके लिए कष्ट नहीं उठाना चाहते। उन्हें लगता है सबकुछ आसानी से बैठे-बिठाए मिल जाए। इसलिए अगर तुम वास्तव में धर्म का पालन करना चाहते हो तो पहले लक्ष्य का निर्धारण करो फिर उस दिशा में चलने की कोशिश करो।
34. जो मनुष्य किसी भी परिस्थिति में दूसरों का दोष नहीं देखता, वह साधु पुरुष है।
35. यह हँसना कैसा? यह आनंद कैसा? जब नित्य ही चारों ओर आग लगी है। संसार उस आग में जला जा रहा है। तब अंधकार में घिरे हुए तुम लोग प्रकाश को क्यों नहीं

खोजते?

36. दुःख, दुःख समुदय, दुःख निरोध और दुःखनिरोधगामी मार्ग—इन चार आर्य सत्त्यों का ज्ञान न होने से युगों-युगों तक हम सब लोक संस्कृति के पाश में बँधे पड़े थे, किंतु अब इन आर्य सत्त्यों का बोध होने से हमने दुःख की जड़ खोद निकाली है और हमारा पुनर्जन्म से छुटकारा हो गया है।
37. जब तक एक भी जीव संसार में निर्वाण प्राप्ति को शेष होगा, तब तक मैं निर्वाण प्राप्त नहीं करूँगा।
38. घर त्यागने के साथ ही अपनी जाति, गौत्र या धन का अभिमान त्याग देना चाहिए। क्योंकि, इन चीजों से कोई बड़ा नहीं होता। अपने सदाचार के बल पर ही कोई मानव बड़ा बनता है।
39. सरस्वती, प्रयाग, गया, बाहुमती, सुंदरिका आदि नदियों में पापकर्मी मूढ़ चाहे जितना स्नान करें, वे शुद्ध नहीं होंगे। ये नदियाँ पापकर्मी को शुद्ध नहीं कर सकतीं। शुद्ध मनुष्य के लिए तो सर्वत्र ही 'गया' है। शुद्ध तथा शुचिकर्मा के व्रत सदा पूर्ण होते हैं। यदि तुम मिथ्या भाषण नहीं करते, बिना दिए लेते नहीं, श्रद्धावान् हो, मत्सर रहित हो, तो 'गया' जाने से क्या लाभ? क्षुद्र जलाशय भी तुम्हारे लिये 'गया' है।
40. संसार में जितने दुःख हैं सब अस्थायी हैं। वे हमारी मूर्खता के कारण पैदा होते हैं। जब तक हमें उनकी असलियत नहीं मालूम हो जाती, तभी तक वे हमारे काबू से बाहर रहते हैं। हम कटु स्मृतियों या घटनाओं को बार-बार याद करते हैं व मन को दुःखी रखते हैं। यदि याद ही करना है तो अतीत की अच्छी मधुर बातों को याद करिए। वे प्रेरणा देती हैं।
41. जो जाग गया वहीं बुद्ध है। जागने से तात्पर्य है सत्य तत्त्व को प्राप्त करने के लिए सक्रिय हो जाना। यही जागृत अवस्था है। हम उनसे अपने जीवन में अनेक गुण सीख सकते हैं। उनके उपदेश हमारे जीवन को सुखमय बनाने का रास्ता दिखाते हैं।
42. केवल मांस खाने से ही आदमी अपवित्र नहीं होता बल्कि क्रोध अर्थात् गुस्सा, व्यभिचार, छल-कपट, ईर्ष्या, आत्म प्रशंसा, दूसरों की निंदा आदि से भी व्यक्ति अपवित्र होता है। अतः सच्ची पवित्रता वही है जिसमें ये दुर्गुण न हों। व्यक्ति पवित्र तभी हो सकता है जब वह भ्रम से मुक्त हो। यदि दुःखों से दूर रहना है तो पवित्र जीवन बिताओ।
43. सच्चा सुख तभी मिलता है। जब हमारे जीवन में स्वार्थ के भाव न हो। जीवन में सत्य और शांति आने से ही सच्चा सुख मिलता है। सत्य ही सबको अशुभ से मुक्त कर सकता है। इस संसार में सत्य के अलावा कोई दूसरा मुक्तिदाता नहीं। हमेशा सत्य पर आस्था रखो और उसे जीवन में उतारो।

- 'विषय-रस में सुख देखते हुए विहार करनेवाले, इंद्रियों में असंयत, जन में मात्रा न जाननेवाले, आलसी और अनुद्यमी पुरुष को मार वैसे ही गिरा देता है जैसे आँधी दुर्बल वृक्ष को।
44. जब तुम्हारी जीवन-ऊर्जा एक संगीत में प्रवाहित होती है। तुम्हारे भीतर बड़ी ताजगी है, जीवन का उद्दाम वेग है। तब तुम्हारे भीतर जीवन की चुनौती लेने की सामर्थ्य है। तब तुम जीवंत हो। अन्यथा मरने के पहले ही लोग मर जाते हैं। मौत तो बहुत बाद में मारती है, तुम्हारी नासमझी बहुत पहले ही मार डालती है।
45. आँधी आती है, जाती है। कोई हिमालय उससे डिगता नहीं। पर तुम्हारे भीतर हिमालय की शांत, संयत दशा होनी चाहिए। हिमालय एक प्रतीक है। अर्थ केवल इतना है कि तुम जब भीतर अडिग हो, जब तुम ऐसे स्थिर हो जैसे शैल-शिखर—तब आँधी आती है, चली जाती है; तुम वैसे ही खड़े रहते हो जैसे पहले थे—तब तो ऐसा होगा कि आँधी तुम्हें और स्वच्छ कर जाएगी। तुम्हारी धूल-झंखाड़ झाड़ जाएगी। तुम्हें और नया कर जाएगी।
46. कोई व्यक्ति पैदा होते ही श्रद्धा लेकर नहीं आता। संदेह ही लेकर आता है। हर बच्चा संदेह लेकर आता है। इसीलिए तो बच्चे इतने सवाल पूछते हैं, जितने बूढ़े भी नहीं पूछते। बच्चा हर चीज से प्रश्न बना लेता है। स्वाभाविक है। पूछना ही पड़ेगा, क्योंकि पूछ-पूछकर ही तो वहाँ पहुँचेंगे, जहाँ अनुभव होगा। और जब पूछना मिट जाता जाता है, सारी जिज्ञासा खत्म हो जाती है, तब सत्य के दर्शन होते हैं।
47. किसी बात को इसलिए मत मानो क्योंकि ऐसा सदियों से होता आया है। किसी बात को इसलिए भी मत मानो कि बड़े लोग या विद्वान् लोग ऐसा कहते हैं। किसी बात को इसलिए भी मत मानो कि ग्रंथों में ऐसा लिखा हुआ है। किसी भी बात को अपनी अनुभूति से परखने के बाद ही स्वीकार करो।
48. शील, समाधि और प्रज्ञा का रास्ता सभी के लिए खुला है। कोई भी व्यक्ति इस रास्ते पर चलकर वहाँ पहुँच सकता है, जहाँ बुद्ध हुआ जाता है। लेकिन इसके लिए स्वयं चलना पड़ेगा। जिसने अपने चित्त से राग, द्वेष और मोह को समूल नष्ट कर दिया, वह भगवान् हो गया। तथागत का अर्थ है 'तथता'—अर्थात् सत्य के सहारे जिसने 'परम सत्य' का साक्षात्कार किया हो। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति जो सांसारिक दुःखों से छुटकारा पाकर निर्वाण सुख प्राप्त करना चाहता है, उसे स्वयं ही शील, समाधि और प्रज्ञा के मार्ग पर चलना पड़ेगा।
49. देवता, अर्हत पद और भगवान्—ये सब चित्त की अवस्थाएँ हैं। चित्त ज्यों-ज्यों निर्मल होता जाता है, प्रेम, मुदिता, मैत्री, बंधुत्व और क्षमा की भावना बढ़ती जाती है। और मनुष्य उत्तरोत्तर उन्नति करता जाता है।

50. प्रकृति के नियमों के अनुसार आचरण करना ही धर्म है। ये नियम सार्वजनीन, सार्वकालिक और सार्वदेशिक होते हैं। प्रकृति कभी नस्ल, वर्ण, रंग, रूप, लिंग, उम्र, हैसियत, स्थान आदि में भेदभाव नहीं करती। प्रकृति के नियम जैसे शरीर के बाहर काम करते हैं, ठीक उसी तरह शरीर के भीतर भी काम करते हैं। क्रोध आने पर, लालच, ईर्ष्या और वासना जागने पर हर प्राणी को व्याकुल होना ही पड़ता है, चाहे वह किसी भी लिंग, जाति, वर्ग, धर्म या देश का हो, या किसी भी समय में हो। जो भी व्यक्ति प्रकृति के नियमों के अनुसार जीवनयापन करता है, वह सुखी व शांत रहता है। और जो निसर्ग के नियमों का उल्लंघन करता है वह दुःखी व व्याकुल होता है।
51. जन्म लेना दुःख है, बुढ़ापा दुःख है, शोक जताना दुःख है, रोना, व्यग्र और इच्छाओं की पूर्ति न होना भी दुःख है। अतः भिक्षुओं, तुम प्रमाद रहित होकर जीओ। जो जन्म लेता है, वह बुढ़ापे को प्राप्त होता है और जो मरता है उसे नव जीवन अवश्य मिलता है और इसी तरह जीवन चक्र निरंतर चलता रहता है। यह बंधन है, इससे छुटकारा पाना ही मोक्ष की प्राप्ति है।
52. बुद्धत्व जागरण की आखिरी दशा है। तुम्हारी ही ज्योतिर्मय दशा है। तुम्हारा ही चिन्मय रूप है। जब तुम स्मरण करते हो—नमो बुद्धस्य...तो तुम अपने ही चिन्मय रूप को पुकार रहे हो। तुम अपने ही भीतर अपनी ही आत्मा को आवाज दे रहे हो। तुम चिल्ला रहे हो कि प्रकट हो जाओ। नमो बुद्धस्य किसी बाहर के बुद्ध के लिए समर्पण नहीं है, यह अपने ही अंतर्मन में छिपे बुद्ध के लिए ही खोज है।
- नमो बुद्धस्य या बुद्धानुस्मृति स्वयं के ही परम रूप की स्मृति है। वह सतह के द्वारा अपनी ही गहराई की पुकार है। वह परिधि के द्वारा केंद्र का स्मरण है। वह बाच् के द्वारा अंतर की जागृति की चेष्टा है।
53. जो हर वक्त बुद्धत्व की याद करते हैं, वे सदा अपने जीवन को एक ही दिशा में समर्पित करते चले जाते हैं। उनके जीवन का बस एक ही प्रयोजन है कि कैसे जाग जाएँ? वे हर स्थिति और हर उपाय को अपने जागने का ही प्रयोजन बना लेते हैं। वे हर अवसर को जागने के लिए ही काम में लाते हैं। ऐसे लोग राह के पत्थरों को भी सीढ़ियाँ बना लेते हैं। वे एक ही लक्ष्य रखते हैं कि उन्हें उस मंदिर तक पहुँचना है, जो उन्हीं के भीतर अवस्थित है। अपनी ही सीढ़ियाँ चढ़नी हैं, अपनी ही देह और मन को सीढ़ी बनाना है। जागरूक होकर निरंतर धीरे-धीरे स्वयं के भीतर सोए हुए बुद्ध को जगाना है।
54. बुद्ध का अर्थ है, जिनमें धर्म अपने परिपूर्ण रूप में प्रकट हुआ है। काश, तुम ऐसे व्यक्ति को पा लो, जिसके जीवन में तुम्हें लगे कि धर्म साकार हुआ है, तो तुम धन्यभागी हो। जिसके जीवन से तुम्हें ऐसा लगे कि धर्म केवल सिद्धांत नहीं है, जीती-

- जागती स्थिति है। ऐसी स्थिति में बुद्ध कहते हैं कि उस व्यक्ति के स्मरण से लाभ होता है, जो जाग गया है। क्योंकि जब तक तुम जागे हुए व्यक्ति के पास नहीं जाओगे, तब तक तुम कितना भी सोचो, जागरण का आधार नहीं मिलेगा। तब तक तुम निराधार हो। तुम्हारे भीतर संदेह बना ही रहेगा।
55. जीवन का बस इतना ही उपयोग हो सकता है कि जीते जी तुम दीया जला लो। ध्यान का दीया जला लो, बस इतना ही जीवन का उपयोग है...
 56. आस्था की कोई जरूरत नहीं है; अनुभव के साथ अपने से आ जाएगी, तुम्हें लानी नहीं है। और तुम्हारी आई हुई आस्था का मूल्य भी क्या हो सकता है? तुम्हारी लाई हुई आस्था का मूल्य भी क्या हो सकता है? तुम्हारी लाई आस्था के पीछे भी तुम्हारे संदेह छिपे होंगे।
 57. यह धर्म तुम्हारा स्वभाव है। यह तुम्हारे भीतर बह रहा है, अहर्निश बह रहा है। इसे खोजने के लिए आकाश में आँखें उठाने की जरूरत नहीं है, इसे खोजने के लिए भीतर जरा सी तलाश करने की जरूरत है। यह तुम हो, तुम्हारी नियति है, यह तुम्हारा स्वभाव है। एक क्षण को भी तुमने इसे खोया नहीं, सिर्फ विस्मरण हुआ है।
 58. असमंजस ही मनुष्य के मन की स्थिति है—हुआ जाए अथवा न हुआ जाए। लेकिन दोनों एक साथ हैं। यदि तुम बने रहने का निर्णय करते हो तो ठीक, इससे विपरीत तुम्हें न बने रहने का भी निर्णय लेना है, चुनाव करो ही मत। चीजों को वैसी बनी रहने दो, जैसी वे हैं। युद्ध होता हो तो उसे होने दो। वहाँ शांति है, उसे होने दो, प्रेम हो तो उसे बना रहने दो, प्रेम न हो, तो उसे भी होने दो।
 59. जैसे चंद्रमा नक्षत्र-पथ का अनुसरण करता है, वैसे ही धीर, प्राज्ञ, बहुश्रुत, शीलवान, व्रतसंपन्न, आर्य तथा बुद्धिमान पुरुष का अनुगमन करना चाहिए।
 60. अपने को पहचानना ही परमात्मा को पहचानना है।
 61. युद्ध और शांति दोनों साथ हैं। यदि युद्ध मिट जाता है तो शांति स्वतः मिट जाएगी। वहाँ न युद्ध होगा और न शांति। यदि संसार में मृत्यु लुप्त हो जाए तो क्या यह जानने में समर्थ हो सकोगे कि तुम जीवित हो? जीवन को परिभाषित करने के लिए मृत्यु जरूरी है। शांति की स्पष्ट व्याख्या के लिए, उसको सीमांकित करने लिए युद्ध की आवश्यकता है। मित्रता को परिभाषित करने के लिए शत्रुता जरूरी है और प्रेम की स्पष्ट व्याख्या के लिए घृणा जरूरी है। इसलिए वे पृथक् नहीं हैं। वे एक-दूसरे को परिभाषित करते हैं, एक दूसरे पर आश्रित हैं। यदि उनमें से एक मिट जाता है तो दूसरे का भी लुप्त हो जाना सुनिश्चित है।
 62. माता-पिता ही ब्रह्मा हैं, माता-पिता की सेवा करनी चाहिए, पूजा करनी चाहिए। बुद्ध ने कहा कि माता-पिता की जिम्मेदारी है कि वे अपने बच्चों को बुरी आदतों और अकुशल कामों से बचाकर रखें। उन्हें अच्छी से अच्छी शिक्षा दिलाएँ। उन्हें यथोचित

- आयवाले काम धंधे में लगाएँ, विवाह योग्य हो जाने पर उनका अच्छा रिश्ता करें और उचित समय आने पर पारिवारिक संपत्ति उनके सुपुर्द कर दें।
63. पति-पत्नी एक-दूसरे के विश्वासपात्र रहें, एक-दूसरे का सम्मान करें, एक-दूसरे के प्रति पूरी तरह समर्पित रहें, एक-दूसरे के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पालन करें। पति-पत्नी एक-दूसरे के पूरक होते हैं।
64. मित्रों-पड़ोसियों-रिश्तेदारों का उचित आदर-सत्कार करना चाहिए। उनकी भलाई की कामना करनी चाहिए, उनसे बराबरी का व्यवहार करना चाहिए और मुसीबत में उनकी मदद करनी चाहिए। मित्रता के बारे में बुद्ध ने कहा कि अच्छा दोस्त वही है, जिसकी दोस्ती में स्थिरता हो, जो अमीरी-गरीबी, सुख-दुःख, सफलता-असफलता सभी परिस्थितियों में एक सा व्यवहार करे, जिसकी भावना आपके प्रति डगमगाती न रहे, आपकी बात सुने, मुसीबत के दिनों में साथ दे, अपने सुख-दुःख में शामिल करे और आपके सुख-दुःख को अपना समझे।
65. मन ही सारी प्रवृत्तियों का अगुवा है। प्रवृत्तियों का आरंभ मन से ही होता है। वे मनोमय हैं। जब कोई आदमी दूषित मन से बोलता है या वैसा कोई काम करता है तो दुःख उसका पीछा उसी तरह करता है, जिस तरह बैलगाड़ी के पहिए बैल के पैरों का पीछा करते हैं। इसी प्रकार मन ही सारी प्रवृत्तियों का अगुवा है। प्रवृत्तियाँ मन से ही आरंभ होती हैं। यदि मनुष्य शुद्ध मन से बोलता है या कोई काम करता है, तो सुख उसी तरह उसका पीछा करता है, जिस तरह मनुष्य के पीछे उसकी छाया।
66. जो आदमी शांत पद चाहता है, जो कल्याण करने में कुशल है, उसे चाहिए कि वह योग्य और परम सरल बने। उसकी बातें सुंदर, मीठी और नम्रता से भरी हों। उसे संतोषी होना चाहिए। उसका पोषण सहज होना चाहिए। कामों में उसे ज्यादा फँसा नहीं होना चाहिए। उसका जीवन सादा हो। उसकी इंद्रियाँ शांत हों। वह चतुर हो। वह ढीठ न हो। किसी कुल में उसकी आसक्ति नहीं होनी चाहिए।
67. वह ऐसा कोई छोटे से छोटा काम भी न करे, जिसके लिए दूसरे जानकार लोग उसे दोष दें। उसके मन में ऐसी भावना होनी चाहिए कि सब प्राणी सुखी हों, सबका कल्याण हो, सभी अच्छी तरह रहें।
68. कोई किसी को न ठगे। कोई किसी का अपमान न करे। वैर या विरोध से एक-दूसरे के दुःख की इच्छा न करें।
69. माता जैसे अपनी जान की परवाह न कर अपने इकलौते बेटे की रक्षा करती है, उसी तरह मनुष्य सभी प्राणियों के प्रति असीम प्रेमभाव बढ़ाए।
70. बिना बाधा के, बिना वैर या शत्रुता के मनुष्य ऊपर-नीचे, इधर-उधर सारे संसार के प्रति असीम प्रेम बढ़ाए।

71. खड़ा हो चाहे चलता हो, बैठा हो चाहे लेटा हो, जब तक मनुष्य जागता है, तब तक उसे ऐसी ही स्मृति बनाए रखनी चाहिए। इसी का नाम ब्रह्म-विहार है।
72. ऐसा मनुष्य किसी मिथ्या दृष्टि में नहीं पड़ता। शीलवान व शुद्ध दर्शनवाला होकर वह काम, तृष्णा का नाश कर डालता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता।
73. लोहे का बंधन हो, लकड़ी का बंधन हो, रस्सी का बंधन हो, इसे बुद्धिमान लोग बंधन नहीं मानते। इनसे कड़ा बंधन तो है सोने का, चाँदी का, मणि का, कुंडल का, पुत्र का, स्त्री का।
74. तृष्णा की नदियाँ मनुष्य को बहुत प्यारी और मनोहर लगती हैं। जो इनमें नहाकर सुख खोजते हैं, उन्हें बार-बार जन्म, मरण और बुढ़ापे के चक्कर में पड़ना पड़ता है।
75. कंजूस आदमी देवलोक में नहीं जाते। मूर्ख लोग दान की प्रशंसा नहीं करते। पंडित लोग दान का अनुमोदन करते हैं। दान से ही मनुष्य लोक-परलोक में सुखी होता है।
76. प्रमाद में मत फँसो। भोग-विलास में मत फँसो। कामदेव के चक्कर में मत फँसो। प्रमाद से दूर रहकर ध्यान में लगनेवाला व्यक्ति महासुख प्राप्त करता है।
77. प्रमाद न करने से, जागरूक रहने से अमृत का पद मिलता है, निर्वाण मिलता है। प्रमाद करने से आदमी बे-मौत मरता है। अप्रमादी नहीं मरते। प्रमादी तो जीते हुए भी मरे जैसे हैं।

1. पवित्रता पल-पल मौजूद है

बुद्ध से किसी ने पूछा, "मनुष्य पवित्र कैसे बनता है?" "दिन भर में चौबीस घंटे होते हैं, और इन घंटों में सैकड़ों-हजारों पल। कोई भी जो इन प्रत्येक पलों में पूरी तरह मौजूद रहता है, वही पवित्र है।"

2. नम्रता

बुद्ध ने सत्य की तलाश में लगे एक व्यक्ति से कहा, "यदि तुम सचमुच सत्य की तलाश में लगे हो तो एक चीज का पता तुम्हें होना चाहिए, जो सर्वोपरि है..."

"हाँ, मुझे पता है—उसे प्राप्त करने की असीम लालसा..." उस व्यक्ति ने टोका।

"नहीं," बुद्ध ने आगे जवाब दिया, "अपनी गलती को स्वीकारने की क्षमता।"

3. कौन हैं साधु

महात्मा बुद्ध के एक शिष्य पूर्ण ने उनसे धर्म की शिक्षा ली। शिक्षा पूरी करने के बाद उन्होंने उनसे एक राज्य में जाकर धर्म प्रचार करने की आज्ञा माँगी। असल में उस राज्य के लोग बहुत क्रूर और कठोर दिल के माने जाते थे। बुद्ध ने पूर्ण से पूछा, "वे तुम्हें अपशब्द कहकर तुम्हारी निंदा करेंगे, तो कैसा अनुभव करोगे?" पूर्ण बोले, "मैं उन्हें भला समझूँगा, क्योंकि उन्होंने थप्पड़ और घूसों से प्रहार नहीं किया।" बुद्ध बोले, "थप्पड़ घूँसे मारकर आहत करें तो?" पूर्ण ने उत्तर दिया, "तो भी उन्हें सत्पुरुष ही मानूँगा, क्योंकि शस्त्र प्रहार नहीं किया।" बुद्ध बोले, "और यदि शस्त्र-प्रहार करें तो?" पूर्ण बोले, "उन्हें सुहृदय ही समझूँगा, क्योंकि उन्होंने मुझे जान से नहीं मारा।" बुद्ध ने फिर पूछा, "तुम्हें जान से मार दें तो?" पूर्ण बोले, "यदि वे दुःख-रूपी संसार से मुझे मुक्ति दिला देंगे, तो मुझ पर उपकार ही करेंगे।" भगवान् बुद्ध अपने शिष्य के जवाब से प्रसन्न हुए और कहा, "जो मनुष्य किसी भी परिस्थिति में दूसरों का दोष नहीं देखता, वह साधु पुरुष है।"

4. तोल-मोल कर 'बोल'

भरद्वाज नाम के एक ब्राह्मण ने एक बार बुद्ध को खूब भला-बुरा कहा। जब वह ब्राह्मण थककर चुप हो गया, तो बुद्ध ने प्रश्न किया, "तुम्हारे घर कभी अतिथि आते हैं?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "अवश्य पधारते हैं।" बुद्ध ने फिर पूछा, "तुम जो सामान आतिथ्य के दौरान देते

हो, उसे वे अस्वीकार कर दें, तो उनका क्या होगा?" ब्राह्मण ने खीझकर कहा, "वे वस्तुएँ मेरे पास वापस आ जाएँगी।" बुद्ध ने आगे पूछा, "तुम्हारे द्वारा क्रोध में कहे गए अपशब्द यदि मैं अस्वीकार कर दूँ, तो वे कहाँ जाएँगी?" लज्जित ब्राह्मण बुद्ध के आगे नत-मस्तक हो गया और क्षमा-याचना करने लगा। बुद्ध कहते हैं कि यदि आप सामनेवाले व्यक्ति से कुछ कहने जा रहे हैं, तो तोल-मोल कर ही बोलें।

5. अंतिम सत्य

एक बार गौतमी नाम की स्त्री अपने इकलौते पुत्र की मृत्यु से बहुत दुःखी हो गई। वह बुद्ध के पास जाकर अपने बच्चे को जीवित करने के लिए उनसे प्रार्थना करने लगी। बुद्ध ने उसे उपाय बताते हुए कहा कि वह किसी ऐसे घर से सरसों के दाने लाए, जिसके घर में कभी कोई मृत्यु न हुई हो। मृत बालक को छाती से चिपकाए गौतमी घर-घर घूमती फिरी, लेकिन सभी जगह उसे एक ही उत्तर मिला—ऐसा कोई घर नहीं, जहाँ आज तक किसी की मृत्यु नहीं हुई हो। तब उसे यह बोध हुआ कि मृत्यु जीवन का अंतिम सत्य है। जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु भी निश्चित है। उसने शव की अंतिम क्रिया कर दी और तुरंत बुद्ध के दर्शन पाने के लिए निकल पड़ी। भगवान् बुद्ध ने उसे मृत्यु का शोक करने के बजाय उस स्थिति का चिंतन करने का सुझाव दिया, जिसमें पहुँचने पर जन्म ही न हो। जन्म के अभाव में मृत्यु की संभावना स्वयं समाप्त हो जाएगी। ज्ञान की बातें सुनकर गौतमी धन्य हो गई।

6. अपनी रक्षा

बहुत पुरानी बात है। किसी जंगल में भगवान् बुद्ध को एक जहरीला साँप मिला। उसका आस-पास के गाँवों में बड़ा आतंक था। बुद्ध ने उसे मनुष्यों को काटने-डँसने से मना किया और अहिंसा का मार्ग दिखाया। साँप बुद्ध का अनुयायी हो गया। कुछ महीनों बाद—

जब बुद्ध उसी जंगल के पास के एक गाँव से गुजर रहे थे तो उन्होंने देखा कि लोग एक साँप को ईंट-पत्थरों से मार रहे हैं। बुद्ध ने लोगों को उस साँप को मारने से रोका। तब उस लहू-लुहान घायल साँप ने बताया कि वह वही भक्त साँप है जो उन्हें जंगल में मिला था। साँप ने बताया कि उसने बुद्ध के आदेश का पालन करते हुए लोगों को काटना-डँसना छोड़ दिया था। फिर भी लोगों ने मार-मारकर उसकी यह हालत कर दी। भगवान् बुद्ध ने साँप से कहा, "मैंने काटने-डँसने के लिए मना किया था मित्र, फुफकारने के लिए नहीं। तुम्हारी फुफकार से ही लोग भाग जाते, ऐसा करने के लिए मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि जो कमजोर है, वह ठीक रास्ते पर नहीं चल सकता।

7. मैं तुम्हें केवल भय दे सका

महात्मा बुद्ध किसी उपवन में विश्राम कर रहे थे। तभी बच्चों का एक झुंड आया और पेड़ पर पत्थर मारकर आम गिराने लगा। एक पत्थर बुद्ध के सिर पर लगा और उससे खून बहने लगा। बुद्ध की आँखों में आँसू आ गए। बच्चों ने देखा तो भयभीत हो गए। उन्हें लगा कि

अब बुद्ध उन्हें भला-बुरा कहेंगे। बच्चों ने उनके चरण पकड़ लिए और उनसे क्षमायाचना करने लगे। उनमें से एक ने कहा, "हमसे भारी भूल हो गई है। हमने आपको मारकर रुला दिया।" इस पर बुद्ध ने कहा, "बच्चों, मैं इसलिए दुःखी हूँ कि तुमने आम के पेड़ पर पत्थर मारा तो पेड़ ने बदले में तुम्हें मीठे फल दिए, लेकिन मुझे मारने पर मैं तुम्हें केवल भय दे सका।"

8. मालुङ्क्यपुत्त और गौतम बुद्ध

एक बार मालुङ्क्यपुत्त नामक एक व्यक्ति भगवान् बुद्ध के पास आया और बोला कि उसे भगवान् की शिक्षा अच्छी लगती है, किंतु इसके पूर्व कि वह उनका शिष्य बने उसे कुछ प्रश्नों के उत्तर चाहिए। उसने बुद्ध के समक्ष 10 प्रश्न रखे। वे इस प्रकार के थे—यह विश्व अनंत है या सीमित? यह सदैव बना रहेगा या कभी इसका अंत हो जाएगा? मरने के बाद बुद्ध कहाँ जाएगा? उसका अस्तित्व रहेगा या नहीं? इत्यादि। बुद्ध ने कहा कि मालुङ्क्यपुत्त का व्यवहार एक ऐसे व्यक्ति की तरह है जिसको एक विषाक्त बाण लगा है। वैद्य उसको निकालना चाहता है किंतु वह व्यक्ति पहले इन प्रश्नों के उत्तर चाहता है। यह तीर किसने मारा, उसकी जाति क्या है, उसका रंग क्या है, वह किस देश का रहनेवाला है इत्यादि। जब तक इन सवालों का जवाब मालूम होगा, विष फैल जाएगा और व्यक्ति मर जाएगा।

बुद्ध ने कहा कि मालुङ्क्यपुत्त को पूछना चाहिए कि यह मानवीय दुःखों का बाण कैसे निकाला जाए और इस दुःख को दूर करने के लिए इन आध्यात्मिक प्रश्नों के उत्तर आवश्यक नहीं हैं।

बुद्ध ने कहा कि उन्होंने बताया है कि दुःखों का कारण क्या है और दुःखों का निवारण किया जा सकता है अष्टमार्गीय मध्यम मार्ग के पालन से। यह मध्यम मार्ग अर्थात् बीच का रास्ता है जिसमें किसी भी प्रकार की अति वर्जित है। जैसे वीणा के तार जब ठीक से कसे होते हैं तो बजाने से सुंदर संगीत उत्पन्न होता है। यदि तार ढीले हैं या अधिक कसे तो मधुर संगीत नहीं निकलता।

9. मन का मैल

एक वृद्ध भिक्षु और एक युवा भिक्षु दोनों नदी किनारे से चले जा रहे थे, तभी उन्होंने देखा कि एक युवती नदी में डूब रही है और बचाओ-बचाओ के लिए आवाज दे रही है। वह युवा भिक्षु तुरंत नदी में कूदा और युवती को नदी से बाहर निकाल लाया। इस तरह से उसने उस युवती को बचा लिया। इतने में वृद्ध भिक्षु गरम हो गए, "अरे, तुमने उस महिला को छू

लिया! अब मैं तुम्हें बुद्ध से कहूँगा और तुम्हें दंड/प्रायश्चित्त दिलवाऊँगा" दोनों बुद्ध के सामने पहुँचे।

वृद्ध भिक्षु ने कहा, "भंते! इसको दंड मिलना चाहिए।"

बुद्ध ने पूछा, "क्यों?"

वृद्ध भिक्षु ने कहा, "इस बात का कि इसने युवती को उठाकर नदी से बाहर रखा, इसने उसे छू लिया, इसका ब्रह्मचर्य नहीं रहा। इसलिए इसे प्रायश्चित्त मिलना चाहिए।"

बुद्ध ने कहा, "प्रायश्चित्त पहले तुम ले लो।"

"मैं, मैं किस बात का प्रायश्चित्त लूँ?" विस्मय से उन्होंने पूछा।

बुद्ध ने कहा, "इसने तो उस महिला को उठाकर वहाँ ही रख दिया पर तुम तो उसे अपने मानस में उठाकर यहाँ तक ले आए। तुम्हारे मन में अभी भी वह है, तुम इतनी देर से उसे ढो रहे हो, इसने तो वहाँ रखा और भूल भी गया। सुनो, मैं तुम्हें परिणामों की निर्मलता के लिए यह चार उपाय बताता हूँ—

1. हमेशा मन को स्वस्थ रखना, दूसरों के बारे में विकृत नहीं करना,
2. इंद्रियों पर विजय प्राप्त करना,
3. अच्छी संगति में रहना,
4. भगवान् की भक्ति प्रार्थना करना।"

10. भगवान् कहाँ हैं

एक बार एक व्यक्ति भगवान् बुद्ध के पास गया और ऐसे ही कहने लगा, "मुझे भगवान् में यकीन नहीं है, भगवान् क्यों?" भगवान् बुद्ध कहते हैं, "ठीक है! तुम सही हो"। यह सुनकर वह व्यक्ति खुशी से वापिस चला गया। एक और व्यक्ति उनके पास आया और कहने लगा, "भगवान् है"। वे फिर कहते हैं, "ठीक है! तुम सही हो"। अब एक तीसरा व्यक्ति उनके पास आया और प्रार्थना भाव से बोला, "कई लोग कहते हैं कि भगवान् नहीं है। उनका तर्क सुनकर ऐसा ही लगता है। पर जब मैं संतों का प्रवचन सुनता हूँ तो लगता है भगवान् हैं। अब मैं दुविधा में हूँ कि भगवान् है या नहीं। मुझे भगवान् का अनुभव तो नहीं है और मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। कृपया आप मुझे बताएँ।" यह सुनकर भगवान् बुद्ध बोले, "तुम यहाँ रुको। तुम्हारे मन में भगवान् को लेके कोई धारणा नहीं है। हम दोनों एक साथ खोजते हैं भगवान् हैं कि नहीं। अशांत मन कभी ईश्वर के करीब नहीं जा सकता। अशांत मन में ज्ञान

भी नहीं उपजता। और अगर कोई ज्ञान ऐसे मन में उपजता भी है तो वह सही नहीं होता। इसलिए मैं कहता हूँ पहले शांत हो जाते हैं। तुम सही जगह आए हो। यही रास्ता है। भगवान् के बारे में अपनी धारणाएँ छोड़ दो। आँखें बंद करो और यह खोजो कि तुम कौन हो? क्या तुम यह शरीर हो? क्या तुम यह मन हो? क्या तुम विचार हो? मैं इन विचारों के परे भी कुछ हूँ?"—जब तुम यह अनुभव करते हो तो सत्य अपने आप ही उदय होने लगता है।

11. प्रेम का एक शाश्वत मूल्य है

एक बार महात्मा बुद्ध अपने शिष्यों के साथ बैठे हुए थे। बात चल रही थी कि मनुष्य के संत होने और देवता होने की प्रक्रिया कैसे बनती है। यह कैसे माना जाए कि यह आदमी संत हो गया है या देवता की श्रेणी में पहुँच गया है।

इस पर महात्मा बुद्ध ने जवाब दिया कि जीवन में प्रेम एक शाश्वत मूल्य होता है। जब मनुष्य के प्रेम के दायरे में सभी लोग आ जाते हैं, भले ही किसी जाति, धर्म, स्थान और नस्ल से संबंध रखते हों तो आदमी संत की श्रेणी में आ जाता है, और जब दुश्मन भी उसके प्रेम के दायरे में आ जाते हैं तो आदमी देवता की श्रेणी में आ जाता है। महात्मा बुद्ध ने कितना सटीक उत्तर दिया। समय गुजर जाता है लेकिन नैतिक पतन से उबरना बहुत मुश्किल होता है!

12. विषय वासना विष भरी कटोरी

इंद्रिय-संयम के बारे में भगवान् बुद्ध एक अवसर पर अपने शिष्यों को समझा रहे थे, "इंद्रियों के माध्यम से प्रकृतिप्रदत्त शक्ति का संरक्षण, भंडारण, नियंत्रण, अभिवर्द्धन एवं सुनियोजन करके अनेक प्रकार की ऋद्धियों और सिद्धियों का स्वामी बना जा सकता है।" उन्होंने कहा, "ग्यारह इंद्रियों में तीन इंद्रियाँ प्रमुख हैं—पहली स्वादेन्द्रिय, दूसरी कामेन्द्रिय और तीसरी मनश्चेतना का आधिभौतिक इंद्रिय 'मन' है। इन तीनों में भी कामेन्द्रिय-जननेन्द्रिय का संयम सर्वोपरि माना गया है। इसका असंयम अनेक आधि-व्याधियों का जन्मदाता है। इस ऊर्जा केंद्र का ऊर्ध्वारोहण शारीरिक और मानसिक संयम द्वारा संभव है।"

भगवान् बुद्ध के आशय को बौद्ध भिक्षु ठीक-ठीक नहीं समझ पा रहे थे। तब बुद्ध तूँबे के बने एक पात्र को लेकर भिक्षुओं के साथ नदी के किनारे गए और उस पात्र में एक-दो बड़े छिद्र कर दिए, फिर अपने एक शिष्य से कहा कि इस पात्र में जल भरकर ले आओ। शिष्य ने कई बार प्रयत्न करने पर भी उस पात्र को जलपूरित करने में अपने को असमर्थ पाया और वापस लौटकर बुद्ध के समीप आकर कहा, "प्रभु! पात्र छिद्रयुक्त होने से जलहीन ही रहता है। उससे जल निकल जाता है।" बुद्ध ने कहा, "भंते! ठीक इसी प्रकार प्रकृतिप्रदत्त शक्ति छिद्रयुक्त व्यक्ति को उपलब्ध नहीं होती। सबसे बड़ा छिद्र वासना में है। यह वासना सर्वदा अपूरणीय रिक्तता लिए हुए है। यह दुष्पूर है।"

भगवान् बुद्ध ने शिष्यों को वासना का स्वभाव बताते हुए कहा कि इसके पात्र को कभी भी पूरी तरह भरा नहीं जा सकता है।

13. नियंत्रण से ही सच्चा सुख

वे अपने शिष्य आनंद के साथ वन भ्रमण पर थे। रास्ते में उन्हें प्यास लगी। पास ही में एक नहर बह रही थी। महात्मा बुद्ध ने आनंद को वहाँ से पानी लाने को कहा। आनंद पानी लेने गया, लेकिन वह खाली हाथ लौट आया और बोला, "भंते, नहर का पानी बहुत गंदा है। आपकी आज्ञा हो तो किसी दूसरी जगह से पानी ले आऊँ।"

बुद्ध ने कहा, "नहीं आनंद, थोड़ी देर ठहरकर उसी नहर से पानी ले आओ।" आनंद वहाँ दोबारा पहुँचा और देखा कि नहर का पानी निर्मल हो चुका था। आनंद ने लोटा भर जल लिया और लौट आया। अब नहर का पानी स्वच्छ था।

बुद्ध ने मुसकराते हुए शिष्य आनंद से कहा, "मनोवेगों पर नियंत्रण से ही सच्चा सुख हासिल होता है। ठीक उसी तरह, जिस तरह कुछ देर प्रतीक्षा करने पर तुम्हें उसी स्थान से साफ पानी प्राप्त हुआ।"

14. अपना दीपक बनो

दो यात्री धर्मशाला में ठहरे हुए थे। एक दीप बेचनेवाला आया। एक यात्री ने दीप खरीद लिया। दूसरे ने सोचा, मैं भी इसके साथ ही चल पड़ूँगा, मुझे दीप खरीदने की क्या जरूरत है। दीप लेकर पहला यात्री रात में चल पड़ा, दूसरा भी उसके साथ लग लिया। थोड़ी दूर चलकर पहला यात्री एक ओर मुड़ गया। दूसरे यात्री को विपरीत दिशा में जाना था। वह वहीं रह गया। बिना उजाले के लौट भी नहीं पाया।

महात्मा बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं! अपना दीपक बनो। अपने कार्य ही अपने दीप हैं। वही मार्ग दिखाएँगे।"

15. करुणा के भाव

गौतम बुद्ध अपने शिष्यों से कहा करते थे, "बुद्धत्व को उपलब्ध होने से पूर्व करुणा के भाव से भर जाओ।" एक दिन सारिपुत्र ने पूछा, "आखिर इस बात के लिए इतना आग्रह क्यों? क्योंकि हमने तो आपको कई बार यह कहते हुए सुना है कि बुद्धत्व करुणा को अपने साथ लाता है, इसलिए बुद्धत्व से पूर्व करुणा के भाव से भरने की क्या आवश्यकता है? यह बात तो विरोधाभासी लगती है।"

गौतम बुद्ध ने कहा, "यह बात विरोधाभासी लगती जरूर है लेकिन इसके कारण भिन्न हैं। बुद्धत्व घटित होने के बाद जो करुणा आती है...तुम उसमें दूसरे को सहभागी बनाने में समर्थ न हो सकोगे, यदि तुमने बुद्धत्व घटित होने से पूर्व उसे बाँटने का अभ्यास न किया, यदि तुमने अपने आपको अनुशासित न किया कि तुम उन लोगों के लिए जीवित रहो, जो अभी भी अँधेरी तंग गलियों में अपना मार्ग खोज रहे हैं।"

16. मिथ्या

गौतम बुद्ध के जीवन का एक रोचक प्रसंग है, एक बार कुछ लोग जन्म से अंधे युवा व्यक्ति को लेकर गौतम बुद्ध के पास आए और उन लोगों ने निवेदन किया कि इसे प्रकाश के

विषय में उपदेश करें। यह व्यक्ति प्रकाश को मानने के लिए तैयार नहीं है, पूरा गाँव हार गया है। यह प्रकाश जैसे विराट् सत्य को मिथ्या कहता है।

यदि आप इसे प्रकाश के होने का तथ्य स्वीकार करा देंगे तो पूरा गाँव आपका शिष्यत्व स्वीकार कर लेगा, अन्यथा हम सब लोग यह मान लेंगे कि प्रकाश भी भ्रम है।

गौतम बुद्ध ने अपनी करुणा भरी निगाह से उस जन्मांध युवा की ओर देखकर कहा, "इसे उपदेश की नहीं उपचार की आवश्यकता है। उपचार से इसकी आँखें खुल सकती हैं, फिर स्वतः यह प्रकाश को समझने की सामर्थ्य पा जाएगा, तर्क से मैं इसे पराजित तो कर सकता हूँ, परंतु प्रकाश की अनुभूति नहीं करा सकता।"

17. पूजा का तरीका

राजगृह पथ पर जा रहे गौतम बुद्ध ने देखा, एक गृहस्थ भीगे वस्त्र पहने सभी दिशाओं को नमस्कार कर रहा था।

बुद्ध ने पूछा, "महाशय, इन छह दिशाओं की पूजा का क्या अर्थ है? यह पूजा क्यों करनी चाहिए?"

गृहस्थ बोला, "यह तो मैं नहीं जानता।"

बुद्ध ने कहा, "बिना जाने पूजा करने से क्या लाभ होगा?"

गृहस्थ ने कहा, "भंते, आप ही कृपा करके बतलाएँ की दिशाओं की पूजा क्यों करनी चाहिए?"

तथागत बोले, "पूजा करने की दिशाएँ भिन्न हैं। माता-पिता और गृहपति पूर्व दिशा हैं, आचार्य दक्षिण, स्त्री-पुत्र और मित्र आदि उत्तर दिशा हैं। सेवक नीची तथा श्रवण ब्राह्मण ऊँची दिशा हैं। इनकी पूजा से लाभ होता है।" गृहस्थ बोला, "और तो ठीक, भंते! परंतु सेवकों की पूजा कैसे? वे तो स्वयं मेरी पूजा करते हैं?"

बुद्ध ने समझाया, "पूजा का अर्थ हाथ जोड़ना, सर झुकाना नहीं। सेवकों की सेवा के बदले उनके प्रति स्नेह-वात्सल्य ही उनकी पूजा है।" गृहस्थ ने कहा, "आज आपने मुझे सही दिशा का ज्ञान कराया।"

18. मृगतृष्णा

जब महात्मा बुद्ध ने राजा प्रसेनजित की राजधानी में प्रवेश किया तो वे स्वयं उनकी आगवानी के लिए आए। वे महात्मा बुद्ध के पिता के मित्र थे एवं उन्होंने बुद्ध के संन्यास लेने के बारे में सुना था।

अतः उन्होंने बुद्ध को अपना भिक्षुक जीवन त्यागकर महल के ऐशो-आराम के जीवन में लौटने के लिए मनाने का प्रयास किया। वे ऐसा अपनी मित्रता की खातिर कर रहे थे।

बुद्ध ने प्रसेनजित की आँखों में देखा और कहा, "सच बताओ। क्या समस्त आमोद-प्रमोद के बावजूद आपके साम्राज्य ने आपको एक भी दिन का सुख प्रदान किया है?"

प्रसेनजित चुप हो गए और उन्होंने अपनी नजरें झुका लीं।

"दुःख के किसी कारण के न होने से बड़ा सुख और कोई नहीं है; और अपने में संतुष्ट रहने से बड़ी कोई संपत्ति नहीं है।"

19. परिस्थितियों के हिसाब से आचरण

भगवान् गौतम बुद्ध उस समय वैशाली में थे। उनके धर्मोपदेश जनता बड़े ध्यान से सुनती और अपने आचरण में उतारने का प्रयास करती थी। बुद्ध का विशाल शिष्य वर्ग भी उनके वचनों को यथासंभव अधिकाधिक लोगों तक पहुँचाने के सत्कार्य में लगा हुआ था। एक दिन बुद्ध के शिष्यों का एक समूह घूम-घूमकर उनके उपदेशों का प्रचार कर रहा था कि मार्ग में भूख से तड़पता एक भिखारी दिखाई दिया।

उसे देखकर बुद्ध के एक शिष्य ने उसके पास जाकर कहा, "अरे मूर्ख! इस तरह क्यों तड़प रहा है? तुझे पता नहीं कि तेरे नगर में भगवान् बुद्ध पधारे हुए हैं। तू उनके पास चल, उनके उपदेश सुनकर तुझे शांति मिलेगी।" भिखारी भूख सहन करते-करते इतना शक्तिहीन हो चुका था कि वह चलने में भी असमर्थ था।

सायंकाल उस शिष्य ने तथागत को इस प्रसंग से अवगत कराया। तब बुद्ध स्वयं भिखारी के पास पहुँचे और उसे भरपेट भोजन करवाया। जब भिखारी तृप्त हो गया तो वह सुख की नींद सो गया। शिष्य ने आश्चर्यचकित हो पूछा, "भगवन्! आपने इस मूर्ख को उपदेश तो दिया ही नहीं, बल्कि भोजन करा दिया।" भगवान् बुद्ध मुसकराकर बोले, "वह कई दिनों से भूखा था। इस समय भरपेट भोजन कराना ही उसके लिए सबसे बड़ा उपदेश है। भूख से तड़पता मनुष्य भला धर्म के मर्म को क्या समझेगा? प्रत्येक सिद्धांत अथवा सर्वस्वीकृत

आचरण सभी परिस्थितियों में लागू नहीं होता। परिस्थिति के अनुसार उसका पालन, अपालन या परिवर्तन मान्य किया जाना ही श्रेष्ठ आचरण है।"

20. बुद्ध ने समझाई दान की महिमा

भगवान् बुद्ध का जब पाटलिपुत्र में शुभागमन हुआ, तो हर व्यक्ति अपनी-अपनी सांपत्तिक स्थिति के अनुसार उन्हें उपहार देने की योजना बनाने लगा। राजा बिंबिसार ने भी कीमती हीरे, मोती और रत्न उन्हें पेश किए। बुद्धदेव ने सबको एक हाथ से सहर्ष स्वीकार किया।

इसके बाद मंत्रियों, सेठों, साहूकारों ने अपने-अपने उपहार उन्हें अर्पित किए और बुद्धदेव ने उन सबको एक हाथ से स्वीकार कर लिया।

इतने में एक बुढ़िया लाठी टेकते वहाँ आई। बुद्धदेव को प्रणाम कर वह बोली, "भगवन्, जिस समय आपके आने का समाचार मुझे मिला, उस समय मैं यह अनार खा रही थी। मेरे पास कोई दूसरी चीज न होने के कारण मैं इस अधखाए फल को ही ले आई हूँ। यदि आप मेरी इस तुच्छ भेंट स्वीकार करें, तो मैं अहोभाग्य समझूँगी।"

भगवान् बुद्ध ने दोनों हाथ सामने कर वह फल ग्रहण किया। राजा बिंबिसार ने जब यह देखा तो उन्होंने बुद्धदेव से कहा, "भगवन्, क्षमा करें! एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। हम सबने आपको कीमती और बड़े-बड़े उपहार दिए, जिन्हें आपने एक हाथ से ग्रहण किया, लेकिन इस बुढ़िया द्वारा दिए गए छोटे एवं जूठे फल को आपने दोनों हाथों से ग्रहण किया, ऐसा क्यों?"

यह सुन बुद्धदेव मुसकराए और बोले, "राजन्, आप सबने अवश्य बहुमूल्य उपहार दिए हैं, किंतु यह सब आपकी संपत्ति का दसवाँ हिस्सा भी नहीं है। आपने यह दान दीनों और गरीबों की भलाई के लिए नहीं किया है इसलिए आपका यह दान 'सात्त्विक दान' की श्रेणी में नहीं आ सकता।

"इसके विपरीत इस बुढ़िया ने अपने मुँह का कौर ही मुझे दे डाला है। भले ही यह बुढ़िया निर्धन है लेकिन इसे संपत्ति की कोई लालसा नहीं है। यही कारण है कि इसका दान मैंने खुले हृदय से, दोनों हाथों से स्वीकार किया है।"

21. उस शहर के लोग

एक बार गौतम बुद्ध ने कुछ शिष्यों के साथ किसी शहर में डेरा जमाया। जब शिष्य शहर के भीतर घूमने निकले तो लोगों ने उन्हें बहुत बुरा-भला कहा। वे क्रोध में भरकर बुद्ध के पास लौटे। बुद्ध ने पूछा, "क्या बात है? आप सब तनाव में क्यों हैं?" उनका एक शिष्य बोला, "हमें यहाँ से तुरंत वहाँ चलना चाहिए, जहाँ हमारा आदर हो। यहाँ तो लोग दुर्व्यवहार के सिवा कुछ जानते ही नहीं।"

बुद्ध मुसकराकर बोले, "क्या किसी और जगह पर तुम सद् व्यवहार की अपेक्षा करते हो?" दूसरा शिष्य बोला, "कम-से-कम यहाँ से तो भले लोग ही होंगे।" बुद्ध बोले, "किसी स्थान को केवल इसलिए छोड़ना गलत है कि वहाँ के लोग दुर्व्यवहार करते हैं। हम तो संत हैं। हमें चाहिए कि उस स्थान को तब तक न छोड़ें जब तक वहाँ के हर व्यक्ति को सुधार न डालें। वे हमारे अच्छा व्यवहार करने पर सौ बार दुर्व्यवहार करेंगे। लेकिन कब तक? आखिर उन्हें सुधारना ही होगा और उत्तम प्राणी बनने का प्रयास करना ही होगा।"

तब बुद्ध के प्रिय शिष्य आनंद ने पूछा, "उत्तम व्यक्ति कौन होता है?" बुद्ध बोले, "व्यक्ति ठीक उसी तरह होता है जिस प्रकार युद्ध में बढ़ता हुआ हाथी। जिस प्रकार युद्ध की ओर बढ़ता हुआ हाथी चारों ओर के तीर सहते हुए भी आगे चलता जाता है उसी तरह उत्तम व्यक्ति भी दुष्टों के अपशब्द को सहन करते हुए अपने कार्य करता चलता है। स्वयं को वश में करनेवाले प्राणी से उत्तम कोई हो ही नहीं सकता।" शिष्यों ने उस शहर से जाने का इरादा त्याग दिया।

22. सच्चा समर्पण

एक सम्राट् गौतम बुद्ध के दर्शन को आया। वह बुद्ध के निकट आया। उसके बाएँ हाथ में बहुमूल्य रत्नजड़ित आभूषण था। जैसे ही उसने उसे बुद्ध को भेंट करने को आगे बढ़ाया, बुद्ध ने कहा, "गिरा दो।" सम्राट् तो हैरान रह गया। उसे इसकी अपेक्षा नहीं थी। उसे बड़ा आघात लगा, लेकिन जब बुद्ध ने कहा कि गिरा दो, तो उसने गिरा दिया। सम्राट् एक दूसरी चीज भी ले आया था, वह गुलाब का सुंदर फूल था। उसने वह भेंट करने के लिए अपना हाथ बुद्ध की तरफ बढ़ाया। बुद्ध ने फिर कहा, "गिरा दो।" अब तो सम्राट् और भी परेशान हो गया। अब उसके पास भेंट देने को और कुछ नहीं था, लेकिन जब बुद्ध ने कहा कि गिरा दो, तो उसने फूल भी गिरा दिया। तभी सम्राट् को अचानक अपने मैं का स्मरण आया। उसने सोचा कि मैं स्वयं को ही क्यों न भेंट कर दूँ।

इस बोध के साथ वह बुद्ध के सम्मुख झुक गया, लेकिन बुद्ध ने फिर कहा, "गिरा दो।" अब तो गिराने को भी कुछ न था, और बुद्ध ने कहा, गिरा दो। महाकश्यप, सारिपुत्त, आनंद तथा अन्य शिष्य, जो वहाँ मौजूद थे, हँसने लगे और सम्राट् को बोध हुआ कि यह कहना भी कि मैं अपने को भेंट करता हूँ, अहंकारपूर्ण है। यह कहना भी कि मैं अब अपने को समर्पित करता हूँ, समर्पण नहीं है। तब वह स्वयं ही गिर पड़ा। बुद्ध हँसे और बोले, "तुम्हारी समझ अच्छी है।"

जब तक तुम समर्पण के खयाल को भी नहीं गिरा देते, जब तक तुम खाली हाथों के खयाल को भी नहीं विदा हो जाने देते, तब तक समर्पण नहीं घटित होता है।

23. सबसे बड़ी कला

एक युवा ब्रह्मचारी था। वह बहुत ही प्रतिभावान था। उसने मन लगाकर शास्त्रों का अध्ययन किया था। वह प्रसिद्धि पाने के लिए नई-नई कलाएँ सीखता रहता था। विभिन्न कलाएँ सीखने के लिए वह अनेक देशों की यात्रा भी करता था। एक व्यक्ति को उसने बाण बनाते देखा तो उससे बाण बनाने की कला सीख ली। किसी को मूर्ति बनाते देखा तो उससे मूर्ति बनाने की कला सीख ली, इसी तरह कहीं से उसने सुंदर नक्काशी करने की कला को भी सीख लिया। वह लगभग पंद्रह-बीस देशों में गया और वहाँ से कुछ-न-कुछ सीखकर लौटा। इस बार जब वह अपने देश लौटा तो अभिमान से भरा हुआ था।

अहंकारवश वह सबका मजाक उड़ाते हुए कहता, "भला पृथ्वी पर है कोई मुझ जैसा अनोखा कलाविद्। मेरे जैसा महान् कलाकार भला कहाँ मिलेगा?" बुद्ध को उस युवा ब्रह्मचारी के बारे में पता चला तो वह उसका अहंकार तोड़ने के लिए एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर उसके पास आए और बोले, "युवक, मैं अपने आपको जानने की कला जानता हूँ। क्या तुम्हें यह कला भी आती है?" वृद्ध ब्राह्मण का रूप धरे बुद्ध को युवक नहीं पहचान पाया और बोला, "बाबा, भला अपने आपको जानना भी कोई कला है।"

इस पर बुद्ध बोले, "जो बाण बना लेता है, मूर्ति बना लेता है, सुंदर नक्काशी कर लेता है अथवा घर बना लेता है वह तो मात्र कलाकार होता है। यह काम तो कोई भी सीख सकता है। पर इस जीवन में महान् कलाकार वह होता है जो अपने शरीर और मन को नियंत्रित करना सीख जाता है। अब बताओ ये कलाएँ सीखना ज्यादा बड़ी बात है या अपने जीवन को महान् बनाना।" बुद्ध की बातों का अर्थ समझकर युवक का अभिमान चूर-चूर हो गया और वह उनके चरणों में गिर पड़ा। वह उस दिन से उनका शिष्य बन गया।

24. सुख की नींद

एक बार गौतम बुद्ध सिंसवा वन में पर्ण-शय्या पर विराजमान थे कि हस्तक आलबक नामक एक शिष्य ने वहाँ आकर उनसे पूछा, "भंते, कल आप सुखपूर्वक सोए ही होंगे?"

"हाँ, कुमार, कल मैं सुख की नींद सोया।"

"किंतु भगवन्! कल रात तो हिमपात हो रहा था और ठंड भी कड़ाके की थी। आपके पत्तों का आसन तो एकदम पतला है, फिर भी आप कहते हैं कि आप सुख की नींद सोए?"

"अच्छा कुमार, मेरे प्रश्न का उत्तर दो। मान लो, किसी गृहपति के पुत्र का कक्ष वायुरहित और बंद हो, उसके पलंग पर चार अंगुल की पोस्तीन बिछी हो, तकिया कालीन का हो तथा ऊपर वितान हो और सेवा के लिए चार भार्याएँ तत्पर हों, तब क्या वह गृहपति पुत्र सुख से सो सकेगा?" "हाँ भंते, इतनी सुख-सुविधाएँ होने पर भला वह सुख से क्यों न सोएगा? उसे सुख की नींद ही आएगी।"

"किंतु कुमार, यदि उस गृहपति-पुत्र को रोग से उत्पन्न होनेवाला शारीरिक या मानसिक कष्ट हो, तो क्या वह सुख से सोएगा?"

"नहीं भंते, वह सुख से नहीं सो सकेगा।"

"और यदि उस गृहपति-पुत्र को द्वेष या मोह से उत्पन्न शारीरिक या मानसिक कष्ट हो, तो क्या वह सुख से सोएगा?"

"नहीं भंते, वह सुख से नहीं सो सकेगा।"

"कुमार तथागत की राग, द्वेष और मोह से उत्पन्न होनेवाली जलन जड़मूल से नष्ट हो गई है, इसी कारण सुख की नींद आई थी।"

"वास्तव में नींद को अच्छे आस्तरण की आवश्यकता नहीं होती। तुमने यह तो सुना ही होगा कि सूली के ऊपर भी अच्छी नींद आ जाती है। सुखद नींद के लिए चित्त का शांत होना परम आवश्यक है और यदि सुखद आस्तरण हो, तब तो बात ही क्या? सुखद नींद के लिए वह निश्चय ही सहायक होगा।"

25. जन्मना जायते शूद्रः

भगवान् बुद्ध अनाथ पिंडक के जैतवान में ग्रामवासियों को उपदेश दे रहे थे। शिष्य अनाथ पिंडक भी समीप ही बैठा धर्मचर्चा का लाभ ले रहा था। तभी सामने से महाकाश्यप मौद्गल्यायन, सारिपुत्र, चंदु और देवदत्त आदि आते हुए दिखाई दिए। उन्हें देखते ही बुद्ध ने कहा, "वत्स, उठो, यह ब्राह्मण मंडली आ रही है, उसके लिए योग्य आसन का प्रबंध करो।" अनाथ पिंडक ने आयुष्मानों की ओर दृष्टि दौड़ाई, फिर साश्चर्य कहा, "भगवन्, आप संभवतः इन्हें जानते नहीं। ब्राह्मण तो इनमें कोई एक ही है, शेष कोई क्षत्रिय, कोई वैश्य और कोई अस्पृश्य भी है।"

गौतम बुद्ध अनाथ पिंडक के वचन सुनकर हँसे और बोले, "तात जाति जन्म से नहीं, गुण, कर्म और स्वभाव से पहचानी जाती है। श्रेष्ठ रागरहित, धर्मपरायण, संयमी और सेवाभावी होने के कारण ही इन्हें मैंने ब्राह्मण कहा है।" ऐसे पुरुष को तू निश्चय ही ब्राह्मण मान, जन्म से तो सभी जीव शूद्र होते हैं।"

26. समझनेवाला

महात्मा बुद्ध को एक सभा में भाषण करना था। जब समय हो गया तो महात्मा बुद्ध आए और बिना कुछ बोले ही वहाँ से चल गए। तकरीबन एक सौ पचास के करीब श्रोता थे। दूसरे दिन तकरीबन सौ लोग थे पर फिर उन्होंने ऐसा ही किया, बिना बोले चले गए। इस बार पचास कम हो गए।

तीसरा दिन हुआ, साठ के करीब लोग थे। महात्मा बुद्ध आए, इधर-उधर देखा और बिना कुछ कहे वापस चले गए। चौथा दिन हुआ तो कुछ लोग और कम हो गए, तब भी नहीं बोले। जब पाँचवाँ दिन हुआ तो देखा सिर्फ चौदह लोग थे। महात्मा बुद्ध उस दिन बोले और चौदहों लोग उनके साथ हो गए।

किसी ने महात्मा बुद्ध को पूछा, "आपने चार दिन कुछ नहीं बोला। इसका क्या कारण था?" तब बुद्ध ने कहा, "मुझे भीड़ नहीं, काम करनेवाले चाहिए थे। यहाँ वह ही टिक सकेगा जिसमें धैर्य हो। जिसमें धैर्य था वे रह गए।"

केवल भीड़ ज्यादा होने से कोई धर्म नहीं फैलता है। समझनेवाले चाहिए, तमाशा देखनेवाले रोज इधर-उधर ताक-झाक करते हैं। समझनेवाला धीरज रखता है। कई लोगों को दुनिया का तमाशा अच्छा लगता है। समझनेवाला शायद एक हजार में एक ही हो ऐसा ही देखा जाता है।

27. प्रयासों की निरंतरता

भगवान् बुद्ध ज्ञान प्राप्ति के लिए घोर तप में लगे थे। उन्होंने शरीर को काफी कष्ट दिया, यात्राएँ कीं, घने जंगलों में कड़ी साधना की, पर आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। एक दिन निराश हो बुद्ध सोचने लगे—मैंने अभी तक कुछ भी प्राप्त नहीं किया।

अब आगे क्या कर पाऊँगा? निराशा, अविश्वास के इन नकारात्मक भावों ने उन्हें क्षुब्ध कर दिया। कुछ ही क्षणों बाद उन्हें प्यास लगी। वे थोड़ी दूर स्थित एक झील तक पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक दृश्य देखा कि एक नन्ही-सी गिलहरी के दो बच्चे झील में डूब गए।

पहले तो वह गिलहरी जड़वत बैठी रही, फिर कुछ देर बाद उठकर झील के पास गई, अपना सारा शरीर झील के पानी में भिगोया और फिर बाहर आकर पानी झाड़ने लगी। ऐसा वह बार-बार करने लगी। बुद्ध सोचने लगे : इस गिलहरी का प्रयास कितना मूर्खतापूर्ण है। क्या कभी यह इस झील को सुखा सकेगी? किंतु गिलहरी यह क्रम लगातार जारी था। बुद्ध को लगा मानो गिलहरी कह रही हो कि यह झील कभी खाली होगी या नहीं, यह मैं नहीं जानती, किंतु मैं अपना प्रयास नहीं छोड़ूँगी। अंततः उस छोटी सी गिलहरी ने भगवान् बुद्ध को अपने लक्ष्य-मार्ग से विचलित होने से बचा लिया।

वे सोचने लगे कि जब यह नन्ही गिलहरी अपने लघु सामर्थ्य से झील को सुखा देने के लिए दृढ़ संकल्पित है तो मुझमें क्या कमी है? मैं तो इससे हजार गुना अधिक क्षमता रखता हूँ। यह सोचकर गौतम बुद्ध पुनः अपनी साधना में लग गए और एक दिन बोधिवृक्ष तले उन्हें ज्ञान का आलोक प्राप्त हुआ।

28. अनुयायी

उपाली बहुत ही धनी व्यक्ति था और गौतम बुद्ध के ही समकालीन एक अन्य धार्मिक गुरु निगंथा नाथपुत्ता का शिष्य था। नाथपुत्ता के उपदेश बुद्ध से अलग प्रकार के थे। उपाली एक बहुत ही विलक्षण वक्ता था और वाद-विवाद में भी बहुत ही कुशल था। उसके गुरु ने उसे एक दिन कहा कि वह कर्म के कार्य-कारण सिद्धांत पर बुद्ध को बहस की चुनौती दे। एक लंबे और जटिल बहस के बाद बुद्ध उपाली का संदेह दूर करने में सफल रहे और उपाली को बुद्ध से सहमत होना पड़ा कि उसके धार्मिक गुरु के विचार गलत हैं।

उपाली बुद्ध के उपदेशों से इतना प्रभावित हो गया कि उसने बुद्ध को तत्काल उसे अपना शिष्य बना लेने का अनुरोध किया। लेकिन उसे आश्चर्य हुआ जब बुद्ध ने उसे यह सलाह दी, "प्रिय उपाली, तुम एक ख्यातिप्राप्त व्यक्ति हो। पहले तुम आश्वस्त हो जाओ कि तुम

अपना धर्म केवल इसलिए नहीं बदल रहे हो कि तुम मुझसे प्रसन्न हो या तुम केवल भावुक होकर यह फैसला कर रहे हो। खुले दिमाग से मेरे समस्त उपदेशों पर फिर से विचार करो और तभी मेरा अनुयायी बनो।"

चिंतन की स्वतंत्रता की भावना से ओत-प्रोत बुद्ध के इस विचार को सुनकर उपाली और भी प्रसन्न हो गया। उसने कहा, "प्रभु, यह आश्चर्य की बात है कि आपने मुझे पुनर्विचार करने के लिए कहा। कोई अन्य गुरु तो मुझे बेहिचक मुझे अपना शिष्य बना लेता। इतना ही नहीं, वह तो धूम-धाम से सड़कों पर जुलूस निकालकर इसका प्रचार करता कि देखो इस करोड़पति ने अपना धर्म त्यागकर मेरा धर्म अपना लिया है। अब तो मैं और भी आश्वस्त हो गया। कृपया मुझे अपना अनुयायी स्वीकार करें।"

बुद्ध ने उपाली को अपने साधारण अनुयायी के रूप में स्वीकार तो कर लिया लेकिन उसे यह सलाह दी, "प्रिय उपाली, हालाँकि तुम अब मेरे अनुयायी बन चुके हो, लेकिन तुम्हें अब भी सहिष्णुता और करुणा का परिचय देना चाहिए। अपने पुराने गुरु को भी दान देना जारी रखो क्योंकि वह अभी भी तुम्हारी सहायता पर आश्रित हैं।"

29. सबसे शक्तिशाली हमारी इच्छाशक्ति

एक बार आनंद ने भगवान् बुद्ध से पूछा, "जल, वायु, अग्नि इत्यादि तत्त्वों में सबसे शक्तिशाली तत्त्व कौन सा है?"

भगवान् बुद्ध ने कहा, "आनंद, पत्थर सबसे कठोर और शक्तिशाली दिखता है, लेकिन लोहे का हथौड़ा पत्थर के टुकड़े-टुकड़े कर देता है, इसलिए लोहा पत्थर से अधिक शक्तिशाली है।"

"लेकिन लोहार आग की भट्टी में लोहे को गलाकर उसे मनचाही शक्ल में ढाल देता है, इसलिए लोहा पत्थर से अधिक शक्तिशाली है।"

"मगर आग कितनी भी विकराल क्यों न हो, जल उसे शांत कर देता है। इसलिए जल पत्थर, लोहे, और अग्नि से अधिक शक्तिशाली है। लेकिन जल से भरे बादलों को वायु कहीं-से-कहीं उड़ाकर ले जाती है, इसलिए वायु जल से भी अधिक बलशाली है।"

"लेकिन हे आनंद, इच्छाशक्ति वायु की दिशा को भी मोड़ सकती है। इसलिए सबसे अधिक शक्तिशाली तत्त्व है—व्यक्ति की इच्छाशक्ति। इच्छाशक्ति से अधिक बलशाली तत्त्व कोई नहीं है।"

30. अमरत्व का फल

एक दिन एक किसान बुद्ध के पास आया और बोला, "महाराज, मैं एक साधारण किसान हूँ। बीज बोकर, हल चलाकर अनाज उत्पन्न करता हूँ और तब उसे ग्रहण करता हूँ। किंतु इससे मेरे मन को तसल्ली नहीं मिलती। मैं कुछ ऐसा करना चाहता हूँ, जिससे मेरे खेत में अमरत्व के फल उत्पन्न हों। आप मुझे मार्गदर्शन दीजिए, जिससे मेरे खेत में अमरत्व के फल उत्पन्न होने लगें।"

बात सुनकर बुद्ध मुसकराकर बोले, "भले व्यक्ति, तुम्हें अमरत्व का फल तो अवश्य मिल सकता है, किंतु इसके लिए तुम्हें खेत में बीज न बोकर अपने मन में बीज बोने होंगे?" यह सुनकर किसान हैरानी से बोला, "प्रभु, आप यह क्या कह रहे हैं? भला मन के बीज बोकर भी फल प्राप्त हो सकते हैं।"

बुद्ध बोले, "बिलकुल हो सकते हैं और इन बीजों से तुम्हें जो फल प्राप्त होंगे वे वाकई साधारण न होकर अद्भुत होंगे, जो तुम्हारे जीवन को भी सफल बनाएँगे और तुम्हें नेकी की राह दिखाएँगे।" किसान ने कहा, "प्रभु, तब तो मुझे अवश्य बताइए कि मैं मन में बीज कैसे बोऊँ?" बुद्ध बोले, "तुम मन में विश्वास के बीज बोओ, विवेक का हल चलाओ, ज्ञान के जल से उसे सींचो और उसमें नम्रता का उर्वरक डालो। इससे तुम्हें अमरत्व का फल प्राप्त होगा। उसे खाकर तुम्हारे सारे दुःख दूर हो जाएँगे और तुम्हें असीम शांति का अनुभव होगा।" बुद्ध से अमरत्व के फल की प्राप्ति की बात सुनकर किसान की आँखें खुल गईं। वह समझ गया कि अमरत्व का फल सद्विचारों के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

31. संसार में निर्वाण खोजना क्या इतना आसान है?

एक सुबह हमेशा की तरह बुद्ध भिक्षा माँगने एक घर के सामने रुक गए। तब पता नहीं उस घर की गृहिणी किस क्रोध में घर को बुहार रही थी, जब बुद्ध को घर के सामने भिक्षा माँगते देखा तो क्रोध के आवेश में सारा घर का कचरा बुद्ध पर फेंक दिया। इस अप्रत्याशित घटना से कुछ पल के लिए बुद्ध भी हतप्रभ रह गए। उनकी समझ में नहीं आया कि क्या हुआ है? जब सारा शरीर बदबूदार हो गया तो बुद्ध जैसे करुणावान मनुष्य का मन भी पल भर को वेदना से आहत हुआ होगा, उस दिन उन्होंने फिर कोई भिक्षा नहीं माँगी, और अपने स्थान पर जाकर वे ध्यानमग्न होकर बैठ गए। जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

साँझ जब बुद्ध अपने भिक्षुओं को अपने अमृतमय प्रवचन सुना रहे थे, तब उस गृहिणी ने वहाँ आकर बुद्ध के चरणों में सर रखकर रोते हुए माफी माँगी। सुबह की हुई भूल पर बहुत

पछतावा करते हुए उसने पश्चात्ताप किया, तो महात्मा बुद्ध ने उस गृहिणी को क्षमा करते हुए कहा, "अरी बावरी, छोड़ सुबह की घटना को, मैं तो कब का भूल गया। तू भी भूल जा, क्योंकि सुबह क्रोध करनेवाला कोई और मन था। अब माफी माँगनेवाला कोई और है। सब मन का खेल है।"

32. ईमानदारी से कर्म निर्वाह ही सच्ची आध्यात्मिकता

गौतम बुद्ध को उनके अनुयायी यदि स्नेह से कहीं बुलाते तो वे अवश्य जाते। फिर जब बुद्ध पहुँचते, तो श्रोताओं की भारी भीड़ उमड़ पड़ती। बुद्ध के वचनों में जो अमृतत्व होता था, उसका पान करना सभी को प्रीतिकर लगता था। उनके उपदेशों में ऐसा कुछ अवश्य होता था, जिससे गंभीर समस्याएँ सुलझ जातीं और कुछ-न-कुछ सार्थक भी प्राप्त होता।

एक गरीब किसान गौतम बुद्ध का बहुत बड़ा भक्त था। एक दिन वह बुद्ध के पास आया और अपने गाँव आने का आग्रह किया। बुद्ध उसके गाँव पहुँचे, तो सारा गाँव उन्हें देखने व सुनने के लिए उमड़ पड़ा, किंतु वह किसान नहीं आया। हुआ यह कि उसी दिन किसान के बैलों की जोड़ी कहीं खो गई।

किसान इस दुविधा में रहा कि बुद्ध का प्रवचन सुने या अपने बैलों को खोजे? काफी सोचने के बाद उसने अपने बैलों को खोजने का निर्णय किया। घंटों भटकने के बाद बैल मिले। थका-हारा किसान घर आया और भोजन कर सो गया। अगले दिन वह अति संकोच से क्षमाप्रार्थी बन बुद्ध के पास पहुँचा, तो वे बड़े स्नेह से बोले, "मेरी दृष्टि में यह किसान मेरा सच्च अनुयायी है। इसने उपदेश से अधिक महत्त्व कर्म को दिया। यदि यह कल बैलों को न ढूँढ़ते हुए उपदेश सुनता, तो मेरी बातें इसे समझ ही नहीं आतीं, क्योंकि मन बैलों में अटका रहता। इसने कर्म को महत्त्व देकर प्रशंसनीय काम किया। सार यह है कि हम जहाँ जिस भूमिका में हों, उसका ईमानदारी से निर्वाह ही सच्ची आध्यात्मिकता है, क्योंकि प्रत्येक धर्म 'कर्म' को ही सर्वोपरि महत्त्व देता है।"

33. आपकी प्यास आपका रास्ता

एक बार गौतम बुद्ध एक गाँव में ठहरे थे। एक व्यक्ति ने उनको आकर कहा कि आप रोज कहते हैं कि "हर व्यक्ति मोक्ष पा सकता है। लेकिन हर व्यक्ति मोक्ष पा क्यों नहीं लेता है?" बुद्ध ने कहा, "मेरे मित्र, एक काम करो। संध्या को गाँव में जाना और सारे लोगों से पूछकर आना, वे क्या पाना चाहते हैं। एक फेहरिस्त बनाओ। हर एक का नाम लिखो और उसके सामने लिख लाना, उनकी आकांक्षा क्या है?"

वह आदमी गाँव में गया। उसने एक-एक आदमी को पूछा। थोड़े से लोग थे उस गाँव में, सबने उत्तर दिए। वह साँझ को वापस लौटा। उसने बुद्ध को आकर वह फेहरिस्त दी। बुद्ध ने कहा, "इसमें कितने लोग मोक्ष के आकांक्षी हैं?" वह बहुत हैरान हुआ। उसमें एक भी आदमी ने अपनी आकांक्षाओं में मोक्ष नहीं लिखाया था। बुद्ध ने कहा, "हर आदमी पा सकता है, यह मैं कहता हूँ। लेकिन हर आदमी पाना चाहता है, यह मैं नहीं कहता।"

हर आदमी पा सकता है, यह बहुत अलग बात है और हर आदमी पाना चाहता है, यह बहुत अलग बात है। अगर आप पाना चाहते हैं, तो यह आश्वासन मानें। अगर आप सच में पाना चाहते हैं तो इस जमीन पर कोई ताकत आपको रोकने में समर्थ नहीं है। अगर आप नहीं पाना चाहते तो इस जमीन पर कोई ताकत आपको देने में समर्थ नहीं है। आपके भीतर एक वास्तविक प्यास है? अगर है, तो आश्वासन मानें कि रास्ता मिल जाएगा और अगर नहीं है, तो कोई रास्ता नहीं है। आपकी प्यास ही आपके लिए रास्ता बनेगी।

34. मनरूपी पात्र को भी शुद्ध व पवित्र करो

एक बार एक धनी सेठ ने उनसे भिक्षाटन हेतु अपने घर आने का आग्रह किया। बुद्ध ने सहर्ष इस प्रस्ताव को मान लिया। सेठ ने मेवों की खीर बनवाई थी। गौतम बुद्ध उसके घर पहुँचे और गोबर से भरा कमंडल आगे बढ़ाते हुए खीर उसमें डालने के लिए कहा। अस्वच्छ कमंडल देख सेठ ने उसे पहले धोया और फिर उसमें खीर भरकर बुद्ध के हाथ में दे दिया। यह देख बुद्ध ने सेठ से कहा, "हमारे आशीर्वाद को भी यदि आप खीर जितना ही मूल्यवान समझते हो तो उसे रखने के लिए मनरूपी पात्र को भी शुद्ध व पवित्र करो। गोबर जैसी मलिनता अपने अंतस के भीतर भरे रखने पर ये दान-धर्म आपके किसी काम न आ सकेगा।" यह सुनकर सेठ की आँखें खुल गईं और उसने अपने पात्र अर्थात् अंतर्मन में भरे दुर्गुणों से मुक्ति पाने का निश्चय किया। सार यह है कि धार्मिक कर्मकांड, तीर्थस्थलों की यात्रा, व्रत-उपवास और दानादि तभी सार्थक व पुण्य देते हैं, जबकि मन विकाररहित और हमारी भावना शुद्ध हो।

35. राजगृह कहाँ है

एक बार एक व्यक्ति गौतम बुद्ध के पास आकर बोला, "तथागत, मैं तो बहुत प्रयत्न करता हूँ पर जीवन में धर्म का कोई प्रभाव नहीं दिखाई देता।" इस पर बुद्ध ने सवाल किया, "क्या तुम बता सकते हो कि राजगृह यहाँ से कितनी दूर है?" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "दो सौ मील।" बुद्ध ने फिर पूछा, "क्या तुम्हें पक्का विश्वास है कि यहाँ से राजगृह दो सौ मील है?"

व्यक्ति ने कहा, "हाँ, मुझे निश्चित मालूम है कि राजगृह यहाँ से दो सौ मील दूर है।" बुद्ध ने फिर प्रश्न किया, "क्या तुम राजगृह का नाम लेते ही वहाँ अभी तुरंत पहुँच जाओगे?" यह सुनकर वह व्यक्ति आश्चर्य में पड़ गया। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि बुद्ध इस तरह के सवाल क्यों कर रहे हैं? फिर उसने थोड़ा सकुचाते हुए कहा, "अभी मैं राजगृह कैसे पहुँच सकता हूँ। अभी तो मैं आपके सामने खड़ा हूँ। राजगृह तो तब पहुँचूँगा जब वहाँ के लिए प्रस्थान करूँगा और दो सौ मील की यात्रा करूँगा।" यह सुनकर बुद्ध मुसकराए। फिर बोले, "यही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है। तुम राजगृह को तो जानते हो पर वहाँ तभी तो पहुँचोगे जब वहाँ के लिए प्रस्थान करोगे। यात्रा के कष्ट उठाओगे। उसके सुख-दुःख झेलेगो। केवल जान लेने भर से तो वह चीज तुम्हें प्राप्त नहीं हो जाएगी। यही बात धर्म को लेकर भी लागू होती है। धर्म को सब जानते हैं पर उस तक वास्तव में पहुँचने के लिए प्रयत्न नहीं करते। उसके लिए कष्ट नहीं उठाना चाहते। उन्हें लगता है सबकुछ आसानी से बैठे-बिठाए मिल जाए। इसलिए अगर तुम वास्तव में धर्म का पालन करना चाहते हो तो पहले लक्ष्य का निर्धारण करो, फिर उस दिशा में चलने की कोशिश करो।" वह व्यक्ति बुद्ध की बातों को समझ गया। उसने तय किया कि वह धर्म के रास्ते पर चलेगा।

36. अति हर चीज की बुरी

गौतम बुद्ध से राजकुमार श्रोण ने दीक्षा ली थी। एक दिन बुद्ध के अन्य शिष्यों ने श्रोण की शिकायत करते हुए कहा कि श्रोण तप की उच्चतम सीमा पर पहुँच गया है, जिसे देखकर चिंता होती है। सारे भिक्षु एक दिन में एक बार भोजन करते हैं तो श्रोण दो दिन में एक बार भोजन करता है। अन्न-जल ग्रहण नहीं करने से वह अत्यधिक कमजोर हो गया है।

चूँकि वह पहले राजसी जीवन जीता था, इसलिए इतने त्यागमय जीवन का वह आदी नहीं है। वह हड्डियों का ढाँचा रह गया है। यह सुनकर बुद्ध ने श्रोण को बुलाकर कहा, "मैंने सुना है कि तुम सितार बहुत अच्छा बजाते थे। क्या मुझे सुना सकते हो?"

श्रोण बोला, "हाँ, मैं आपको सितार सुना सकता हूँ, किंतु आप अचानक सितार क्यों सुनना चाहते हैं?"

बुद्ध ने कहा, "न सिर्फ सुनना चाहता हूँ, बल्कि उसके विषय में जानना भी चाहता हूँ। मैंने सुना है कि यदि सितार के तार बहुत ढीले हों या अत्यधिक कसे हुए हों तो उनसे संगीत नहीं पैदा होता।"

श्रोण बोला, "यह सही है। यदि तार ढीले होंगे तो सुर बिगड़ जाएँगे और अधिक कसे होने की स्थिति में वे टूट जाएँगे। तार मध्य में होने चाहिए।"

तब बुद्ध ने उसे समझाया, "जो सितार के तार का नियम है, वही जीवन की तपस्या का भी नियम है। मध्य में रहो। न भोग की अति करो, न तप की। अपने अध्यात्म को संतुलित दृष्टि से देखो।"

श्रोण समझ गया कि मध्य में रहकर ही जीवनरूपी सितार से संगीत का आनंद उठाया जा सकता है। वस्तुतः जीवन में अनुशासन और तप आवश्यक है, किंतु एक संतुलन के साथ, क्योंकि अति हर चीज की बुरी होती है।

37. पत्थर और घी

सदियों पहले किसी पंथ के पुरोहित नागरिकों के मृत संबंधी की आत्मा को स्वर्ग भेजने के लिए एक कर्मकांड करते थे और उसके लिए बड़ी दक्षिणा माँगते थे। उक्त कर्मकांड के दौरान वे मंत्रोच्चार करते समय मिट्टी के एक छोटे कलश में पत्थर भरकर उसे एक छोटी सी हथौड़ी से ठोकते थे। यदि वह पात्र टूट जाता और पत्थर बिखर जाते तो वे कहते कि मृत व्यक्ति की आत्मा सीधे स्वर्ग को प्रस्थान कर गई है। अधिकतर मामलों में मिट्टी के साधारण पात्र लोहे की हथौड़ी की हल्की चोट भी नहीं सह पाते थे और पुरोहितों को वांछनीय दक्षिणा मिल जाती थी।

अपने पिता की मृत्यु से दुःखी एक युवक बुद्ध के पास इस आशा से गया कि बुद्ध की शिक्षाएँ और धर्म अधिक गहन हैं और वे उसके पिता की आत्मा को मुक्त कराने के लिए कोई महत्त्वपूर्ण क्रिया अवश्य करेंगे। बुद्ध ने युवक की बात सुनकर उससे दो अस्थिकलश लाने के लिए और उनमें से एक में घी और दूसरे में पत्थर भरकर लाने के लिए कहा।

यह सुनकर युवक बहुत प्रसन्न हो गया। उसे लगा कि बुद्ध कोई नई और शक्तिशाली क्रिया करके दिखाएँगे। वह मिट्टी के एक कलश में घी और दूसरे में पत्थर भरकर ले आया। बुद्ध ने उससे कहा कि वह दोनों कलश को सावधानी से नदी में इस प्रकार रख दे कि वे पानी में मुहाने तक डूब जाएँ। फिर बुद्ध ने युवक से कहा कि वह पुरोहितों के मंत्र पढ़ते हुए दोनों कलश को पानी के भीतर हथौड़ी से ठोक दे और वापस आकर सारा वृत्तांत सुनाए।

उपरोक्त क्रिया करने के बाद युवक अत्यंत उत्साह में था। उसे लग रहा था कि उसने पुरानी क्रिया से भी अधिक महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली क्रिया स्वयं की है। बुद्ध के पास लौटकर उसने सारा विवरण कह सुनाया, "दोनों कलश को पानी के भीतर ठोकने पर वे टूट गए।

उनके भीतर स्थित पत्थर तो पानी में डूब गए लेकिन घी ऊपर आ गया और नदी में दूर तक बह गया।"

बुद्ध ने कहा, "अब तुम जाकर अपने पुरोहितों से कहो कि वे प्रार्थना करें कि पत्थर पानी के ऊपर आकर तैरने लगें और घी पानी के भीतर डूब जाए।"

यह सुनकर युवक चकित रह गया और बुद्ध से बोला, "आप कैसी बात करते हैं? पुरोहित कितनी ही प्रार्थना क्यों न कर लें पर पत्थर पानी पर कभी नहीं तैरेंगे और घी पानी में कभी नहीं डूबेगा!"

बुद्ध ने कहा, "तुमने सही कहा, तुम्हारे पिता के साथ भी ऐसा ही होगा। यदि उन्होंने अपने जीवन में शुभ और सत्कर्म किए होंगे तो उनकी आत्मा स्वर्ग को प्राप्त होगी। यदि उन्होंने त्याज्य और स्वार्थपूर्ण कर्म किए होंगे तो उनकी आत्मा नर्क को जाएगी। सृष्टि में ऐसा कोई भी पुरोहित या कर्मकांड नहीं है जो तुम्हारे पिता के कर्मफलों में तिल भर का भी हेरफेर कर सके।"

38. सुख प्राप्ति के लिए 84वीं समस्या को सुलझाना

एक व्यक्ति महात्मा बुद्ध के पास सहायता माँगने के लिए आया। वह अपने जीवन से निराश था। हालाँकि ऐसी कोई भयंकर बात नहीं थी परंतु वह व्यक्ति किसी-न-किसी बात से निराश रहता था और उसके मन में शिकायत बनी रहती। वह एक किसान था। उसे खेती करना अच्छा लगता था। पर कभी-कभी कम बारिश होती थी या कभी-कभी बहुत ज्यादा। जिससे उसकी खेती अच्छी नहीं हो पाती थी। उसकी पत्नी भी बहुत अच्छी थी, जिसे वह प्यार करता था। लेकिन जब वह उससे ज्यादा छेड़खानी करती तो वह चिढ़ जाता। उसके प्यारे-प्यारे बच्चे थे जो उसे अत्यंत प्रिय थे। लेकिन कभी-कभी...

बुद्ध ने धैर्यपूर्वक उस मनुष्य की व्यथा सुनी और कहा, "मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता।"

भौंचक्के रह गए किसान ने कहा, "मैं तो समझता था कि आप एक महान् शिक्षक हैं और आप मुझे शिक्षा देंगे।"

बुद्ध ने कहा, "हर व्यक्ति किसी-न-किसी समस्या से ग्रस्त है। वास्तव में हम लोग हमेशा ही समस्याओं से घिरे रहते हैं और इसके लिए हम कुछ कर भी नहीं सकते। यदि तुम एक समस्या सुलझा भी लो, तो तुरंत ही दूसरी आ जाएगी। जैसे मान लीजिए कि आप मरने ही

वाले हैं। यह तुम्हारे लिए एक समस्या है। और यह ऐसी समस्या है जिससे आप बच नहीं सकते। हम सभी को इस तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है और उनमें से कुछ कभी समाप्त नहीं होती।"

किसान गुस्से से बोला, "तो आपकी शिक्षा में ऐसी क्या खास बात है?"

बुद्ध बोले, "इससे आपको 84वीं समस्या को हल करने में सहायता मिलेगी।"

किसान बोला, "84वीं समस्या क्या है?"

"यह कि तुम कोई समस्या नहीं चाहते।" बुद्ध ने उत्तर दिया।

यदि हम अपने आपको इच्छाओं से मुक्त कर लें तो कोई समस्या नहीं रहेगी। स्पष्ट सोच के साथ हम वास्तविक परिस्थितियों का सामना करते हैं। हमारे जीवन में जो भी घटित होता या होनेवाला होता है, उसके ऊपर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है या जरा सा ही नियंत्रण है। लेकिन हम किसी समस्या से कैसे निपटते हैं, यह पूर्णतः हमारे हाथ में है।

39. सुख क्या है

एक दिन बहुत से भिक्षु बैठे बात कर रहे थे कि संसार में सुख, सबसे बड़ा सुख क्या है? अगर संसार में सुख ही था तो छोड़कर आए क्यों? जब संसार में दुःख-ही-दुःख रह जाए, तभी तो कोई संन्यास्त होता है। जब यह समझ में आ जाए कि यहाँ कुछ भी नहीं है। खाली पानी के बबूले हैं, आकाश में बने इंद्रधनुष है, आकाश कुसुम है, यहाँ कुछ भी नहीं है, तभी तो कोई संन्यासी होता है। संन्यास का अर्थ ही है, संसार व्यर्थ हो गया है—जानकर, अनुभव से अपने ही साक्षात्कार से। ये भिक्षु ऐसे ही भागकर चले आए होंगे। किसी की पत्नी मर गई होगी। संन्यासी हो गया। किसी का दिवाला निकल गया तो संन्यासी हो गया। अब तुम देखना बहुत से लोग संन्यासी होंगे। फिर कुछ और बचता भी नहीं।

तब बुद्ध भगवान् अचानक आ गए। पीछे खड़े होकर उन्होंने भिक्षुओं की बातें सुनीं। चौंके! फिर कहा, "भिक्षुओं, भिक्षु होकर भी यह सब तुम क्या कह रहे हो। यह सारा संसार दुःख में है। इसमें तुम बता रहे हो। कोई कह रहा है राज्य-सुख कोई कहता है काम सुख-दुःख में है। इसमें तुम बता रहे हो, कोई कह रहा भोजन-सुख। स्वाद सुख; यह सब तुम जो कह रहे हो क्या कह रहे हो? यह सुनकर मुझे आश्चर्य होता है। अगर इस सब में सुख है तो तुम यहाँ आ क्यों गए। सुख भी आभास है।" बुद्ध ने कहा, "दुःख सत्य है। और सुख नहीं है ऐसा नहीं। पर संसार में नहीं है। संसार का अर्थ ही है, जहाँ सुख दिखाई पड़ता है। और है नहीं। जहाँ आभास होता है, प्रतीति होती है, इशारे मिलते हैं कि है। लेकिन जैसे-जैसे पास जाओ, पता चलता है, नहीं है।"

"फिर सुख कहाँ है?" बुद्ध ने कहा, "बुद्धोत्पाद में सुख है। तुम्हारे भीतर बुद्ध का जन्म हो जाए, तो सुख है। तुम्हारे भीतर बुद्ध का अवतरण हो जाए तो सुख है। बुद्धोत्पाद, यह बड़ा अनूठा शब्द है। तुम्हारे भीतर बुद्ध उत्पन्न हो जाएँ। तो सुख है। तुम जब जाओ तो सुख है। सोने में दुःख है, मूर्च्छा में दुःख है। जागने में सुख है। धर्म श्रवण सुख है। तो सबसे परम सुख तो है, बुद्धोत्पाद; कि तुम्हारे भीतर बुद्धत्व पैदा हो जाए। अगर अभी यह नहीं हुआ तो नंबर दो का सुख है—जिनका बुद्ध जाग गया उनकी बात सुनने में सुख है। धर्म श्रवण में सुख है।

"तो सुनो उनकी, जो जाग गए हैं। जिन्हें कुछ दिखाई पड़ा है। गुणों उनकी। लेकिन उसी सुख पर रुक मत जाना, सुन-सुनकर अगर रुक गए तो एक तरह का सुख तो मिलेगा, लेकिन वह भी बहुत दूर जानेवाला नहीं है।" इसलिए बुद्ध ने कहा, "समाधि में सुख है। बुद्धोत्पाद में सुख है, यह तो परम व्याख्या हुई सुख की। फिर यह भी तो हुआ नहीं है। तो उनके वचन सुनो, उनके पास उठो-बैठो, जिनके भीतर यह क्रांति घटी है। जिनके भीतर यह

सूरज निकला है। जिनका प्रभात हो क्या है। जहाँ सूर्योदय हुआ है, उनके पास रमो, इसमें सुख है। मगर इसमें ही रुक मत जाना। ध्यान रखना कि जो उनको हुआ है, वह तुम्हें भी करना है। उस करने के उपाय का नाम समाधि है। सुनो बुद्धों की और चेष्टा करो बुद्धों जैसे बनने की। उस चेष्टा का नाम समाधि है। उस चेष्टा का फल है बुद्धोत्पद। सुनो बुद्धों के वचन, फिर बुद्धों जैसे बनने की चेष्टा में लगना—ध्यान, समाधि, योग। और जिस दिन बन जाओ, उस दिन परम सुख।"

40. खुद की पहचान करो

तथागत यह भी कहते थे कि सबसे पहले व्यक्ति को खुद की पहचान करनी चाहिए। दूसरों की बजाय व्यक्ति खुद के बारे में ज्यादा जानता है। उनका मत था कि बुराई से घृणा करो, बुरे व्यक्ति से नहीं। एक बार की बात है, किसी गाँव के पास बहती नदी के किनारे बुद्ध बैठे थे। किनारे पर पत्थरों की भरमार थी, पर छोटी सी वह नदी अपनी तरल धारा के कारण आगे बढ़ती ही जा रही थी। बुद्ध ने विचार किया कि यह छोटी सी नदी अपनी तरलता के कारण कितनों की प्यास बुझाती है, लेकिन भारी-भरकम पत्थर एक ही स्थान पर पड़े रहते हैं और दूसरों के मार्ग में बाधक बनते रहते हैं। इस घटना की सीख यह है कि दूसरों के रास्ते में रोड़े अटकानेवाले खुद कभी आगे नहीं बढ़ पाते। परंतु जो दूसरों को सद्भाव और स्नेह देता है, वह स्वयं भी आगे बढ़ जाता है।

बुद्ध ऐसे ही विचारों में मगन थे कि तभी उन्होंने ग्रामीणों की एक भीड़ को अपनी ओर आते देखा। बड़ा शोर था और लोग किसी युवती के प्रति अपशब्द बोल रहे थे। तथागत ने देखा कि लोग एक युवती को घसीटकर ला रहे थे और उसको गाली भी दे रहे थे। भीड़ के नजदीक आने पर बुद्ध ने लोगों से युवती को पीटने और अपशब्द कहने का कारण पूछा। लोगों ने कहा कि यह स्त्री व्यभिचारी है और हमारे समाज का नियम है कि यदि व्यभिचारी स्त्री पकड़ी जाए, तो उसे पत्थरों से कुचलकर मार डालना चाहिए।

तथागत ने युवती की ओर देखा और कहा, "जो तुम चाहते हो, वही करो। पर मेरी एक शर्त है कि पत्थर मारने का अधिकारी वही है, जिसने कभी व्यभिचार न किया हो और न ही उसके मन में ऐसे विचार कभी आए हों।" इतना कहकर तथागत शांत हो गए। चारों ओर मौन था। कुछ समय बाद लोगों की भीड़ मन में पश्चात्ताप का भाव लिए हुए वहाँ से विदा हो गई। इस घटना से यही सत्य उभरता है कि हम खुद अपने प्रति न्याय कर सकते हैं, दूसरों के प्रति नहीं, क्योंकि हमारी जानकारी दूसरों के विषय में अधूरी होती है। यदि हम किसी के प्रति न्याय करना चाहते हैं, तो उसे ऐसा प्यार और स्नेह मिलना चाहिए कि खुद ही अपने दोषों को स्वीकार कर ले और उन्हें पुनः न दोहराने का व्रत ले।

41. मौन का महत्त्व

एक व्यक्ति, कोई जिज्ञासु, एक दिन आया। उसका नाम मौलुंकपुत्र था, एक बड़ा ब्राह्मण विद्वान्; पाँच सौ शिष्यों के साथ बुद्ध के पास आया था। निश्चित ही उसके पास बहुत सारे प्रश्न थे। एक बड़े विद्वान् के पास ढेर सारे प्रश्न होते ही हैं, समस्याएँ ही समस्याएँ। बुद्ध ने उसके चेहरे की तरफ देखा और कहा, "मौलुंकपुत्र, एक शर्त है। यदि तुम शर्त पूरी करो, केवल तभी मैं उत्तर दे सकता हूँ। मैं तुम्हारे सिर में भनभनाते प्रश्नों को देख सकता हूँ। एक वर्ष तक प्रतीक्षा करो। ध्यान करो, मौन रहो। जब तुम्हारे भीतर का शोरगुल समाप्त हो जाए, जब तुम्हारी भी की बातचीत रुक जाए, तब तुम कुछ भी पूछना और मैं उत्तर दूँगा। यह मैं वचन देता हूँ।"

मौलुंकपुत्र कुछ चिंतित हुआ—एक वर्ष, केवल मौन रहना, और तब यह व्यक्ति उत्तर देगा। और कौन जाने कि वे उत्तर सही भी है या नहीं? तो हो सकता है एक वर्ष बिलकुल ही बेकार जाए। इसके उत्तर बिलकुल व्यर्थ भी हो सकते हैं। क्या करना चाहिए? वह दुविधा में पड़ गया। वह थोड़ा झिझक भी रहा था। ऐसी शर्त मानने में; इसमें खतरा था। और तभी बुद्ध का एक दूसरा शिष्य, सारिपुत्र, जोर से हँसने लगा। वह वहीं पास में ही बैठा था—एकदम खिलखिलाकर हँसने लगा। मौलुंकपुत्र और भी परेशान हो गया; उसने कहा, "बात क्या है? तुम क्यों हँस रहे हो?"

सारिपुत्र ने कहा, "इनकी मत सुनना। ये बहुत धोखेबाज हैं। इन्होंने मुझे भी धोखा दिया। जब मैं आया था। तुम्हारे तो केवल पाँच सौ शिष्य हैं। मेरे पाँच हजार थे। वह बड़ा ब्राह्मण था, देश भी में मेरी ख्याति थी। इन्होंने मुझे फुसला लिया; इन्होंने कहा, साल भर प्रतीक्षा करो। मौन रहो। ध्यान करो। और फिर पूछना और मैं उत्तर दूँगा। और साल भर बाद कोई प्रश्न ही नहीं बचा। तो मैंने कभी कुछ पूछा ही नहीं और इन्होंने कोई उत्तर दिया ही नहीं। यदि तुम पूछना चाहते हो तो अभी पूछ लो, मैं इसी चक्कर में पड़ गया। मुझे इसी तरह इन्होंने धोखा दिया।"

बुद्ध ने कहा, "मैं अपने वचन पर पक्का रहूँगा। यदि तुम पूछते हो, तो मैं उत्तर दूँगा। यदि तुम पूछो ही नहीं, तो मैं क्या कर सकता हूँ?"

एक वर्ष बीता, मौलुंकपुत्र ध्यान में उतर गया। और-और मौन होता गया—भीतर की बातचीत समाप्त हो गई। भीतर का कोलाहल रुक गया। वह बिलकुल भूल गया कि कब एक वर्ष बीत गया। कौन फिक्र करता है? जब प्रश्न ही न रहें, तो कौन उत्तरों की फिक्र करता है? एक दिन अचानक बुद्ध ने पूछा, "यह वर्ष का अंतिम दिन है। इसी दिन तुम एक

वर्ष पहले यहाँ आए थे। और मैंने तुम्हें वचन दिया था कि एक वर्ष बाद तुम जो पूछोगे, मैं उत्तर दूँगा, मैं उत्तर देने को तैयार हूँ। अब तुम प्रश्न पूछो।"

मौलुंकपुत्र हँसने लगा, और उसने कहा, "आपने मुझे भी धोखा दिया। वह सारिपुत्र ठीक कहता था। अब कोई प्रश्न ही पूछने के लिए नहीं रहा। तो मैं क्या पूछूँ? मेरे पास पूछने के लिए कुछ भी नहीं है।"

असल में यदि तुम सत्य नहीं हो तो समस्याएँ होती हैं। और प्रश्न होते हैं। वे तुम्हारे झूठ से पैदा होते हैं—तुम्हारे स्वप्न, तुम्हारी नींद से वे पैदा होते हैं। जब तुम सत्य, प्रामाणिक मौन समग्र होता हो—वे तिरोहित हो जाते हैं।

मेरी समझ ऐसी है कि मन की एक अवस्था है, जहाँ केवल प्रश्न होते हैं; और मन की एक अवस्था है, जहाँ केवल उत्तर होते हैं। और वे कभी साथ-साथ नहीं होती। यदि तुम अभी भी पूछ रहे हो, तो तुम उत्तर नहीं ग्रहण कर सकते। मैं उत्तर दे सकता हूँ लेकिन तुम उसे ले नहीं सकते। यदि तुम्हारे भीतर प्रश्न उठने बंद हो गए हैं, तो मुझे उत्तर देने की कोई जरूरत नहीं है : तुम्हें उत्तर मिल जाता है। किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता है। मन की एक ऐसी अवस्था उपलब्ध करनी होती है जहाँ कोई प्रश्न नहीं उठते। मन की प्रश्नरहित अवस्था ही एकमात्र उत्तर है।

यही तो ध्यान की पूरी प्रक्रिया है : प्रश्नों को गिरा देना, भीतर चलती बातचीत को गिरा देना। जब भीतर की बातचीत रुक जाती है, तो ऐसा असीम मौन छा जाता है। उस मौन में हर चीज का उत्तर मिल जाता है। हर चीज सुलझ जाती है—शाब्दिक रूप से नहीं, अस्तित्वगत रूप में सुलझ जाती है। कहीं कोई समस्या नहीं रह जाती है।

42. अँगुलिमाल और बुद्ध

प्राचीनकाल की बात है। मगध देश की जनता में आतंक छाया हुआ था। अँधेरा होते ही लोग घरों से बाहर निकलने की हिम्मत नहीं जुटा पाते थे, कारण था अँगुलिमाल। अँगुलिमाल एक खूँखार डाकू था, जो मगध देश के जंगल में रहता था। जो भी राहगीर उस जंगल से गुजरता था, वह उसे रास्ते में लूट लेता था और उसे मारकर उसकी एक उँगली काटकर माला के रूप में अपने गले में पहन लेता था। इसी कारण लोग उसे 'अँगुलिमाल' कहते थे।

एक दिन उस गाँव में महात्मा बुद्ध आए। लोगों ने उनका खूब स्वागत-सत्कार किया। महात्मा बुद्ध ने देखा कि वहाँ के लोगों में कुछ डर सा समाया हुआ है। महात्मा बुद्ध ने लोगों

से इसका कारण जानना चाहा। लोगों ने बताया कि इस डर और आतंक का कारण डाकू अँगुलिमाल है। वह निरपराध राहगीरों की हत्या कर देता है। महात्मा बुद्ध ने मन में निश्चय किया कि उस डाकू से अवश्य मिलना चाहिए।

बुद्ध जंगल में जाने को तैयार हो गए तो गाँववालों ने उन्हें बहुत रोका, क्योंकि वे जानते थे कि अँगुलिमाल के सामने से बच पाना मुश्किल ही नहीं, असंभव भी है। लेकिन बुद्ध अत्यंत शांत भाव से जंगल में चले जा रहे थे। तभी पीछे से एक कर्कश आवाज कानों में पड़ी, "ठहर जा, कहाँ जा रहा है?"

बुद्ध ऐसे चलते रहे मानो कुछ सुना ही नहीं। पीछे से और जोर से आवाज आई, "मैं कहता हूँ ठहर जा।" बुद्ध रुक गए और पीछे पलटकर देखा तो सामने एक खूँखार काला व्यक्ति खड़ा था। लंबा-चौड़ा शरीर, बड़े हुए बाल, एकदम काला रंग, लंबे-लंबे नाखून, लाल-लाल आँखें, हाथ में तलवार लिए वह बुद्ध को घूर रहा था। उसके गले में उँगलियों की माला लटक रही थी। वह बहुत ही डरावना लग रहा था।

बुद्ध ने शांत व मधुर स्वर में कहा, "मैं तो ठहर गया, भला तू कब ठहरेगा?"

अँगुलिमाल ने बुद्ध के चेहरे की ओर देखा, उनके चेहरे पर बिलकुल भय नहीं था, जबकि जिन लोगों को वह रोकता था, वे भय से थर-थर काँपने लगते थे। अँगुलिमाल बोला, "हे संन्यासी! क्या तुम्हें डर नहीं लग रहा है? देखो, मैंने कितने लोगों को मारकर उनकी उँगलियों की माला पहन रखी है।"

बुद्ध बोले, "तुझसे क्या डरना? डरना है तो उससे डरो जो सचमुच ताकतवर है।" अँगुलिमाल जोर से हँसा, "हे साधु! तुम समझते हो कि मैं ताकतवर नहीं हूँ। मैं तो एक बार में दस-दस लोगों के सिर काट सकता हूँ।"

बुद्ध बोले, "यदि तुम सचमुच ताकतवर हो तो जाओ, उस पेड़ के दस पत्ते तोड़ लाओ।" अँगुलिमाल ने तुरंत दस पत्ते तोड़े और बोला, "इसमें क्या है? कहो तो मैं पेड़ ही उखाड़ लाऊँ।" महात्मा बुद्ध ने कहा, "नहीं, पेड़ उखाड़ने की जरूरत नहीं है। यदि तुम वास्तव में ताकतवर हो तो जाओ, इन पत्तियों को पेड़ में जोड़ दो।" अँगुलिमाल क्रोधित हो गया और बोला, "भला कहीं टूटे हुए पत्ते भी जुड़ सकते हैं।" महात्मा बुद्ध ने कहा, "तुम जिस चीज को जोड़ नहीं सकते, उसे तोड़ने का अधिकार तुम्हें किसने दिया? एक आदमी का सिर जोड़ नहीं सकते तो काटने में क्या बहादुरी है?" अँगुलिमाल अवाक रह गया। वह महात्मा बुद्ध की बातों को सुनता रहा। एक अनजानी शक्ति ने उसके हृदय को बदल दिया। उसे लगा कि सचमुच उससे भी ताकतवर कोई है। उसे आत्मग्लानि होने लगी।

वह महात्मा बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा और बोला, "हे महात्मन! मुझे क्षमा कर दीजिए। मैं भटक गया था। आप मुझे शरण में ले लीजिए।" भगवान् बुद्ध ने उसे अपनी शरण में ले लिया और अपना शिष्य बना लिया। आगे चलकर यही अँगुलिमाल एक बहुत बड़ा साधु हुआ।

43. प्रेम का अमोघ अस्त्र

उन दिनों कौशल में राजा प्रसेनजित राज्य करता था। अँगुलिमाल के आतंक से वह बेहद परेशान था। उसे पकड़ने के लिए उसने अपनी पूरी सेना तैनात कर रखी थी, अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग किया, लेकिन अँगुलिमाल उनके हाथ नहीं आया।

एक बार प्रसेनजित पाँच सौ सैनिकों को लेकर अँगुलिमाल को पकड़ने के लिए इधर-उधर दौड़-धूप कर रहा था कि उसे पता चला, भगवान् बुद्ध वहाँ विहार कर रहे हैं। वह उनके पास गया। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

बुद्ध ने कहा, "क्या बात है? इतने परेशान क्यों दिखाई दे रहे हो? क्या किसी राजा ने तुम पर हमला कर दिया है?"

प्रसेनजित बोला, "भन्ते, किसी ने हमला नहीं किया। मेरे राज्य में अँगुलिमाल नाम के डाकू ने तबाही मचा रखी है। मैं उसी को पकड़ने की दिन-रात कोशिश कर रहा हूँ।"

बुद्ध ने मुसकराकर कहा, "वह तुम्हारी पकड़ में नहीं आता! अच्छा, यह बताओ कि यदि वह धर्मात्मा के रूप में तुम्हारे सामने आए तो तुम क्या करोगे?"

"मैं उसका स्वागत करूँगा और उसकी सेवा और रक्षा करूँगा।" प्रसेनजित ने कहा।

तब बुद्ध ने पास बैठे व्यक्ति की बाँह पकड़कर उसे राजा के सामने कर दिया। बोले, "यह रहा अँगुलिमाल।"

प्रसेनजित को काटो तो खून नहीं। वह थर-थर काँपने लगा।

बुद्ध ने कहा, "राजन, अब तुम्हें इससे डरने की आवश्यकता नहीं है।"

इसके बाद प्रसेनजित को पता चला कि भगवान् बुद्ध के प्रेम और करुणा के आगे अँगुलिमाल नतमस्तक हो गया। उसे नया जन्म मिला है। अपनी खूँखार वृत्तियों को त्यागकर वह भिक्षु बन गया है।

प्रसेनजित की आँखें खुल गईं। एक शासक के नाते वह मान बैठा था कि सैन्य और शस्त्र-बल से बढ़कर और कोई बल नहीं है।

आज उसे मालूम हुआ कि प्रेम का मुकाबला दुनिया में कोई ताकत नहीं कर सकती।

उसने अँगुलिमाल का बड़े प्रेम से अभिवादन किया और उससे कहा, "मैं तुम्हारे भोजन, वस्त्र, आवास आदि की व्यवस्था कर देता हूँ।"

अत्यंत विनम्र भाव से अँगुलिमाल बोला, "राजन, आप चिंता न करें, मुझे सबकुछ मिल गया है।"

प्रसेनजित की आँखें डबडबा आईं और वह श्रद्धा से अवनत होकर वहाँ से चला गया।

44. उम्र की गिनती

एक समय की बात है। एक बार गौतम बुद्ध से मिलने सम्राट् प्रसेनजित आए। उन दोनों की बातचीत के समय किसी दूसरे व्यक्ति ने बीच में कोई दखल नहीं दी। इसकी एक मुख्य वजह यह थी कि स्वयं गौतम बुद्ध सम्राट् से बात कर रहे थे। हालाँकि हर कोई यह जानना चाहता था कि दोनों के बीच क्या बातचीत हो रही है? लेकिन कुछ ही देर बाद एक भिक्षु को बीच में दखल देनी ही पड़ी। उसने उन दोनों से क्षमा माँगी। दरअसल, उसे बुद्ध का संदेश लोगों तक पहुँचाने के लिए सूर्यास्त के पहले जाना था, लेकिन वे बगैर बुद्ध के पैर छुए जा नहीं सकते थे।

उसे कई महीने के लिए बाहर जाना था और सूर्य अस्त होनेवाला था। उन्होंने प्रसेनजित से कहा, "मुझे क्षमा करें, मैं आप लोगों को व्यवधान नहीं पहुँचाना चाहता था। सिर्फ एक क्षण... मैं बस बुद्ध के पैर छू लूँ। मुझे जाना है, लेकिन मैं सिर्फ सूर्यास्त के पहले ही जा सकता हूँ।"

भिक्षु की उम्र करीब पचहत्तर वर्ष की होगी। राजा ने उनसे पूछा, "भंते, आपकी उम्र कितनी है?"

भिक्षु ने कहा, "मुझे कहते हुए शर्म आती है, लेकिन मैं सिर्फ चार साल का हूँ।" प्रसेनजित विश्वास नहीं कर पाए। पचहत्तरवर्षीय बूढ़ा व्यक्ति!... यह पूरी तरह से असंभव है कि वह चार वर्ष का ही हो। और जब गौतम बुद्ध ने इसे स्वीकार कर लिया है तो यह और भी अधिक आश्चर्यजनक था। उन्होंने गौतम बुद्ध से कहा, "यह व्यक्ति चार साल का तो नहीं लगता?"

बुद्ध ने कहा, "शायद आपको यह बात पता नहीं है कि किस ढंग से हम लोग उम्र गिनते हैं? जब तक कि कोई व्यक्ति गहरे ध्यान में न उतरे, उस प्रकाश को न जान ले, जो केंद्र से प्रकाशित होता है, वह अभी पैदा नहीं हुआ है। इस व्यक्ति ने अपने होने की झलक सिर्फ चार साल पहले ही पाई है। उसके पहले जो पचहत्तर साल निकले, वे गहरी नींद में निकल गए, वे इसकी उम्र के रूप में नहीं गिने जा सकते।"

प्रसेनजित बहुत उलझन में पड़ गए, लेकिन यह सच था। प्रसेनजित ने बुद्ध के पैर छुए और कहा, "मेरी भी मदद करें, ताकि मैं भी फिर जन्म ले सकूँ। अभी तक मैं यही सोचता रहा कि मैं जिंदा हूँ। आपने मुझे बताया कि मैं मुर्दा हूँ।"

गौतम बुद्ध ने कहा, "सिर्फ यह जान लेना ही कि अभी तक तुम मुर्दा थे, बहुत बड़ी शुरुआत है।"

45. अधिकार

सुबह का समय था। ठंडी-ठंडी हवा बह रही थी। मगध के राजकुमार सिद्धार्थ राजमहल के बाग में घूम रहे थे। राजकुमार को लोग प्यार से गौतम पुकारते थे। उनके साथ उनका चचेरा भाई देवदत्त भी था। गौतम बहुत दयालु स्वभाव के थे। वह पशु-पक्षियों को प्यार करते, पर देवदत्त कठोर स्वभाव का था। पशु-पक्षियों के शिकार में उसे बड़ा आनंद मिलता।

बाग बहुत सुंदर था। तालाब में कमल खिले हुए थे। फूलों पर रंग-बिरंगी तितलियाँ मँडरा रही थीं। पेड़ों पर चिड़ियाँ चहचहा रही थीं। राजकुमार गौतम को देखकर बाग के खरगोश और हिरन उनके चारों ओर जमा हो गए। गौतम ने बड़े प्यार से उन्हें हरी-हरी घास खिलाई। उसी बीच देवदत्त ने एक तितली पकड़ उसके पंख काट डाले। गौतम को बहुत दुःख हुआ, "यह क्या देवदत्त, तुमने तितली के पंख क्यों काटे?"

"मैं इसे धागा बाँधकर नचाऊँगा। बड़ा मजा आएगा।" देवदत्त हँस रहा था।

"नहीं देवदत्त, यह ठीक बात नहीं है। भगवान् ने तितली को पंख उड़ने के लिए दिए हैं। उसके पंख काटकर तुमने अपराध किया है।" गौतम ने कहा।

"अगर तुम तितली और चिड़ियों के बारे में सोचते रहे तो राजा कैसे बन सकोगे गौतम? तुम खरगोश से खेलो, मैं किसी पक्षी का शिकार करता हूँ।" हँसता हुआ देवदत्त बाग के दूसरी ओर चला गया।

गौतम सोच में डूबे बाग में घूम रहे थे। तभी आकाश में सफेद हंस उड़ते हुए दिखाई दिए। सारे हंस पंक्ति बनाकर उड़ रहे थे। उनकी आवाज समझ पाना संभव नहीं था। ऐसा लग रहा था जैसे वे खुशी के गीत गा रहे हों। गौतम हंसों को प्यार से देख रहे थे। अचानक हंस चीख पड़े।

हंसों की पंक्ति टूट गई थी। अचानक खून से लथपथ एक हंस गौतम के पाँवों के पास आ गिरा। हंस के शरीर में एक बाण लगा हुआ था। घायल हंस कष्ट से कराह रहा था। गौतम को लगा मानो हंस उनसे दया की भीख माँग रहा हो। हंस के कष्ट से गौतम को बहुत दुःख हुआ। वे सोचने लगे, "कुछ देर पहले यह हंस कितना खुश था। अपने साथियों के साथ गीत गाता आकाश में उड़ रहा था। एक बाण ने इसे इसके साथियों से अलग कर दिया। यह अन्याय किसने किया?"

गौतम ने बड़ी सावधानी से उसके शरीर से बाण बाहर निकाल दिया। उसके घाव को धोकर साफ किया। प्यार पाकर हंस ने गौतम की गोद में सिर छिपा लिया।

तभी बाग के दूसरी ओर से देवदत्त तेजी से दौड़ता हुआ आया। उसे आता देख हंस डर से सिहर गया। गौतम के पास आकर देवदत्त ने तेज आवाज में कहा, "सिद्धार्थ, यह हंस मेरा है। मैंने इसे बाण मारकर गिराया है।"

"नहीं देवदत्त, यह हंस मेरी शरण में आया है। यह हंस मेरा है।" गौतम ने शांति से जवाब दिया।

"बेकार की बातें मत करो, गौतम। मैंने इसका शिकार किया है। हंस मुझे दे दो।" देवदत्त ने गुस्से से कहा।

"मैं यह हंस तुम्हें नहीं दूँगा, देवदत्त। इसे मैंने बचाया है। इस हंस पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है।" गौतम अपनी बात पर अटल थे।

गौतम और देवदत्त के बीच बहस छिड़ गई। दोनों ही अपनी बात पर अड़े थे। अंत में देवदत्त ने कहा, "ठीक है, चलो महाराज के पास। वे ही हमारा न्याय करेंगे।"

दोनों बालक गौतम के पिता महाराज शुद्धोधन के पास पहुँचे। देवदत्त बहुत क्रोध में था, पर गौतम शांत थे।

देवदत्त ने महाराज से कहा, "महाराज, मैंने आकाश में उड़ते इस हंस का शिकार किया है। इस हंस पर मेरा अधिकार है। मुझे मेरा हंस दिलाया जाए।"

महाराज ने गौतम से कहा, "राजकुमार गौतम, तुम्हारा भाई ठीक कहता है। शिकार किए गए पक्षी पर शिकारी का हक होता है। देवदत्त का हंस उसे दे दो।"

"नहीं महाराज, मारनेवाले से बचानेवाला ज्यादा बड़ा होता है। देवदत्त ने इस हंस के प्राण लेने चाहे, पर मैंने इसकी जान बचाई है। अब आप ही बताइए, इस हंस पर किसका अधिकार होना चाहिए?" गौतम ने कहा।

महाराज सोच में पड़ गए। उन्हें गौतम की बात ठीक लगी। प्राण लेनेवाले से जीवन देनेवाला अधिक महान् होता है। उन्होंने कहा, "गौतम ठीक कहता है। इस हंस के प्राण गौतम ने बचाए हैं, इसलिए इस हंस पर गौतम का अधिकार है।"

क्रोधित होकर देवदत्त ने प्रश्न किया, "अगर हंस मर जाता तो क्या आप यह हंस मुझे दे देते, महाराज?"

"हाँ, तब यह हंस तुम्हारा शिकार होता और तुम्हें तुम्हारा हंस जरूर दिया जाता।" बड़ी शांति से महाराज ने समझाया।

गौतम ने प्यार से हंस को सीने से चिपटा लिया। हंस ने खुश होकर चैन की साँस ली। महाराज ने हंस की प्रसन्नता देखी। अचानक उनके मुँह से निकला—भक्षक से रक्षक बड़ा है। अर्थात् मारकर खानेवाले से रक्षा करनेवाला महान् है।

बाद में राजकुमार गौतम ही महात्मा गौतम बुद्ध बनकर सब प्राणियों को प्यार करने की सीख दी। विश्व को अहिंसा और शांति का संदेश दिया। गौतम बुद्ध को लोग आदर से भगवान् बुद्ध भी कहते हैं। वे सचमुच महान् थे।

46. सागर तक सीधी यात्रा

एक बार भ्रमण करते हुए बुद्ध एक नदी के किनारे रुके तो उन्हें वहाँ नदी में बहते हुए लकड़ी के खंड दिखे। उन्होंने अपने शिष्यों को वह खंड दिखाते हुए कहा, "भिक्खुओं, यदि ये काष्ठ खंड कहीं रुक न जाएँ, कहीं रेत में धँस न जाएँ, भीतर से सड़ न जाएँ, उन्हें कोई बीच में से उठा न ले, या ये बहते हुए किसी भँवर में न फँसें तो यह बहते हुए सीधे समुद्र तक चले जाएँगे। यही बात आपके लिए धर्म पथ पर भी लागू होती है। यदि तुम कहीं रेत में न फँसो, तुम भँवर में न फँसो, यदि तुम ही भीतर से सड़ने न लग जाओ तो तुम भी आत्म जागृति और मुक्ति के सागर तक पहुँच सकते हो।"

शिष्यों ने कहा, "गुरुदेव, कृपया किनारे रुक जाने, डूब जाने या रेत में धँस जाने से तात्पर्य क्या है?"

बुद्ध ने उत्तर देते हुए कहा, "नदी के किनारे रुक जाने का अर्थ है—छह इंद्रियों और उनके विषयों में फँस जाना।

"डूब जाने का अर्थ इच्छा-आकांक्षाओं का दास हो जाना है, जिससे आपकी साधना की क्षमता का क्षरण हो जाता है।

"जल से निकाल लिए जाने का अर्थ है—साधना अभ्यास के स्थान पर स्वयं को निरुद्देश्य बना लेना और घटिया लोगों की संगति में घूमते-फिरते रहना।

"भँवर में फँसे रहने का अर्थ है—पाँच प्रकार की इच्छाओं—सुस्वादु भोजन, विषय वासना, वित्तेषणा, यशेषणा और निद्रा में फँसे रहना।

"भीतर से सड़ने का अर्थ है—दिखावे के सदगुणोंवाला जीवन जीना, संघ को धोखा देना और धर्म को अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए प्रयोग करना।

"भिक्षुओं, यदि आप लोग परिश्रमपूर्वक साधना करो तो इन छह भ्रमजालों में न फँसो, तो निश्चित ही संबोधि (निर्वाण शांतम) का फल प्राप्त कर सकते हो, ठीक उसी प्रकार जिस तरह बहता काष्ठखंड सभी बाधाओं से बचता हुआ समुद्र तक पहुँच जाता है।"

47. गाँठ

एक दिन बुद्ध प्रातः भिक्षुओं की सभा में पधारे। सभा में प्रतीक्षारत उनके शिष्य यह देख चकित हुए कि बुद्ध पहली बार अपने हाथ में कुछ लेकर आए थे। उनके हाथ में एक रूमाल था। बुद्ध के हाथ में रूमाल देखकर सभी समझ गए कि इसका कुछ विशेष प्रयोजन होगा।

बुद्ध अपने आसन पर विराजे। उन्होंने किसी से कुछ न कहा और रूमाल में कुछ दूरी पर पाँच गाँठें लगा दीं।

सब उपस्थित यह देख मन में सोच रहे थे कि अब बुद्ध क्या करेंगे, क्या कहेंगे। बुद्ध ने उनसे पूछा, "कोई मुझे यह बता सकता है कि क्या यह वही रूमाल है, जो गाँठें लगाने के पहले था?"

शारिपुत्र ने कहा, "इसका उत्तर देना कुछ कठिन है। एक तरह से देखें तो रूमाल वही है, क्योंकि इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। दूसरी दृष्टि से देखें तो पहले इसमें पाँच गाँठें नहीं लगी थीं। अतः यह रूमाल पहले जैसा नहीं रहा, और जहाँ तक इसकी मूल प्रकृति का प्रश्न है, वह अपरिवर्तित है। इस रूमाल का केवल बाह्य रूप ही बदला है, इसका पदार्थ और इसकी मात्रा वही है।"

"तुम सही कहते हो, शारिपुत्र", बुद्ध ने कहा, "अब मैं इन गाँठों को खोल देता हूँ", यह कहकर बुद्ध रूमाल के दोनों सिरों को एक दूसरे से दूर खींचने लगे। "तुम्हें क्या लगता है, शारिपुत्र, इस प्रकार खींचने पर क्या मैं इन गाँठों को खोल पाऊँगा?"

"नहीं, तथागत, इस प्रकार तो आप इन गाँठों को और अधिक सघन और सूक्ष्म बना देंगे और ये कभी नहीं खुलेंगी", शारिपुत्र ने कहा।

"ठीक है", बुद्ध बोले, "अब तुम मेरे अंतिम प्रश्न का उत्तर दो कि इन गाँठों को खोलने के लिए मुझे क्या करना चाहिए?"

शारिपुत्र ने कहा, "तथागत, इसके लिए मुझे सर्वप्रथम निकटता से यह देखना होगा कि ये गाँठें कैसे लगाई गई हैं, इसका ज्ञान किए बिना मैं इन्हें खोलने का उपाय नहीं बता सकता"।

"तुम सत्य कहते हो, शारिपुत्र, तुम धन्य हो, क्योंकि यही जानना सबसे आवश्यक है। आधारभूत प्रश्न यही है। जिस समस्या में तुम पड़े हो उससे बाहर निकलने के लिए यह जानना जरूरी है कि तुम उससे ग्रस्त क्योंकर हुए, यदि तुम यह बुनियादी व मौलिक परीक्षण नहीं करोगे तो संकट अधिक ही गहराएगा"।

"लेकिन विश्व में सभी ऐसा ही कर रहे हैं। वे पूछते हैं, 'हम काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, परिग्रह, आदि-आदि वृत्तियों से बाहर कैसे निकलें', लेकिन वे यह नहीं पूछते कि 'हम इन वृत्तियों में कैसे पड़े?'"

48. रेत का घर

एक गाँव में नदी के तट पर कुछ बच्चे खेल रहे थे। रेत के घर बना रहे थे। किसी का पैर किसी के घर में लग जाता तो रेत का घर बिखर जाता। झगड़ा हो जाता। मारपीट हो जाती। तूने मेरा घर मिटा दिया। वह उसके घर पर कूद पड़ता है। वह उसका घर मिटा देता है और फिर अपना घर बनाने में तल्लीन हो जाता है।

महात्मा बुद्ध चुपचाप खड़े अपने भिक्षुओं के साथ ये तमाशा देख रहे थे, पर बच्चे इतने व्यस्त थे कि उन्हें कुछ भी पता नहीं लगा। घर बनाना ऐसी व्यस्तता की बात है, दूसरों से अच्छा बनाना है, उनसे ऊँचा बनाना है।

प्रतियोगिता है, जलन है, ईर्ष्या है। सब अपने-अपने घर को बड़ा करने में लगे हैं परंतु किसी ने सच ही कहा है—जितने ऊँचे महल तुम्हारे, उतना ही गिरने का डर है। जिसको तुमने सागर समझा, पगले जीवन एक लहर है। इस सबके बीच एक स्त्री ने घाट पर आकर आवाज दी, साँझ हो गई है, माँ घरों में याद करती है, घर चलो। बच्चों ने चौंककर देखा। दिन बीत गया है, सूरज डूब गया है। अँधेरा उतर रहा है। वे अपने ही घरों पर उछले-कूदे। सब मटियामेट कर डाला, अब कोई झगड़ा नहीं कि तू मेरे घर पर कूद रहा या मैं तेरे घर पर कूद रहा हूँ।

कोई ईर्ष्या नहीं, कोई बैर नहीं। वे सब बच्चे भागते हुए अपने घरों की तरफ चले गए। दिन भर का सारा झगड़ा, व्यवसाय, मकान, अपना-पराया सब भूल गया। महात्मा बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा, "ऐसे ही एक दिन जब परमात्मा की आवाज आती है—मृत्यु, तब तुम्हारे बाजार, राजधानियाँ सब ऐसे ही पड़ी रह जाती हैं। हम सब जीवन भर रेत के घर ही तो बनाते रहते हैं और मरते वक्त सब वहीं रह जाता है। जीवन का लक्ष्य रेत के मकानों में रहते हुए वास्तविक मकान को ढूँढ़ना है।

49. मुक्ति का मार्ग

गौतम बुद्ध ने 29 वर्ष की आयु में दुःखों से मुक्ति प्राप्त करने का उपाय ढूँढ़ने के लिए अपने परिवार और गृहस्थ जीवन को छोड़ दिया। निरंतर चिंतन-मनन के बाद 35 वर्ष की आयु में उन्होंने इसका रास्ता खोज भी लिया। 45 वर्ष तक उन्होंने लगातार अपने विचारों का प्रचार किया। जब उनका अंत समय आया, वह एक वृक्ष के नीचे लेट गए और मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगे।

उस समय उनका केवल एक ही शिष्य उनके पास था, आनंद। आनंद ही लंबे समय से बुद्ध की सेवा कर रहा था। आनंद ने सोचा कि बुद्ध का अंत समय निकट है। अगर यह बात पास के गाँव में रहनेवाले बुद्ध के शिष्यों को न बताई जाए तो वे नाराज होंगे। आनंद के यह बताने पर लोग बुद्ध का दर्शन करने उस वृक्ष के पास पहुँचने लगे। आसपास के इलाकों में इस बात की चर्चा फैल गई। एक व्यक्ति अपनी जिज्ञासा के समाधान के लिए काफी उत्सुक था।

वह भोलाभाला ग्रामीण था और दुनियादारी को ढंग से नहीं जानता था, फिर भी उसके मन में एक जिज्ञासा थी, जिसे लेकर वह परेशान था। बुद्ध ने उसे अपने पास बुलाया। उस ग्रामीण ने हाथ जोड़कर बुद्ध से जीते जी मुक्ति पाने का मार्ग बताने की प्रार्थना की। बुद्ध ने ग्रामीण से कहा, "जीते जी जन्म-मरण से मुक्ति प्राप्त करना चाहते हो तो जीवन में तीन बातें याद रखो और इन बातों पर अमल भी करो।" सब लोग ध्यान से सुनने लगे। बुद्ध ने कहा, "पहली बात है पापों से, जहाँ तक संभव हो, बचो। दूसरी बात है जीवन में जितने भी पुण्य कर्म कर सकते हो, करो एवं तीसरी बात है अपना मन, चित्त निर्मल रखो।" ये शब्द कहते ही बुद्ध ने अपने प्राण त्याग दिए। बुद्ध की इन तीन शिक्षाओं को अपनाकर ग्रामीणों ने जीते जी मुक्ति का मार्ग पाया। ये तीन शिक्षाएँ मानवता के लिए अमूल्य देन हैं।

50. संयम का पाठ

बुद्ध के पास उनका एक शिष्य आया और बौखलाए स्वर में बोला, "जमींदार राम सिंह ने मेरा अपमान किया है। आप अभी चलें। उसे सबक सिखाना होगा।" बुद्ध बोले, "प्रियवर, सच्चे बौद्ध का अपमान करने की शक्ति किसी में नहीं होती। तुम इस बात को भुला दो। जब प्रसंग भुला दोगे तो अपमान कहाँ बचा रहेगा।" शिष्य ने कहा, "उसने आपके प्रति भी अपशब्दों का प्रयोग किया था। आप चलिए तो सही। आपको देखते ही वह शर्मिदा हो जाएगा और क्षमा माँग लेगा। इससे मैं संतुष्ट हो जाऊँगा।"

बुद्ध कुछ विचारकर बोले, "अच्छा, यदि ऐसी बात है तो मैं अवश्य ही रामजी के पास चलकर उसे समझाने का प्रयास करूँगा।" शिष्य ने आतुर होकर कहा, "चलिए, नहीं तो रात घिर आएगी।" बुद्ध ने कहा, "रात घिरेगी तो क्या! रात के पश्चात् दिन भी तो आएगा। यदि तुम वहाँ चलना आवश्यक ही समझते हो तो मुझे कल याद दिलाना। कल चलेंगे।" दूसरे दिन बात आई-गई हो गई। शिष्य अपने काम में लग गया और बुद्ध अपनी साधना में लीन हो गए। दोपहर होने पर भी शिष्य ने बुद्ध से कुछ नहीं कहा तो बुद्ध ने स्वयं ही शिष्य से पूछा, "आज रामजी के पास चलना है?" शिष्य ने कहा, "नहीं, मैंने जब घटना पर फिर से विचार किया तो मुझे इस बात का आभास हुआ कि भूल मेरी ही थी। अब रामजी के पास चलने की कोई जरूरत नहीं है।"

बुद्ध ने मुसकराकर कहा, "अगर हम तुरंत प्रतिक्रिया देने से बचें तो हमारे भीतर की कटुता समाप्त हो जाती है।"

51. भिक्षु की योग्यता

बौद्ध मठ में सुवास नामक भिक्षु बहुत ही महत्वाकांक्षी था। वह चाहता था कि बुद्ध की तरह वह भी नवभिक्षुओं को दीक्षित करे और उसके शिष्य उसकी चरण-वंदना करें। मगर वह समझ नहीं पा रहा था कि अपनी यह इच्छा कैसे पूरी करे। वह आम तौर पर दूसरे भिक्षुओं से कटा-कटा सा रहता था। कई बार जब दूसरे भिक्षु उसे कुछ कहते तो वह उनसे दूरी बनाने की कोशिश करता या ऐसा कुछ कहता जिससे उसकी श्रेष्ठता साबित हो। दूसरे भिक्षु इस कारण उससे नाराज रहते थे।

एक दिन बुद्ध ने जब प्रवचन समाप्त किया और सभा स्थल खाली हो गया तो अवसर देख सुवास ऊँचे तख्त पर विराजमान बुद्ध के पास जा पहुँचा और कहने लगा, "प्रभु, मुझे भी आज्ञा प्रदान करें कि मैं भी नवभिक्षुओं को दीक्षित कर अपना शिष्य बना सकूँ और आपकी तरह महात्मा कहलाऊँ।" यह सुनकर बुद्ध खड़े हो गए और बोले, "जरा मुझे उठाकर ऊपरवाले तख्त तक पहुँचा दो।" सुवास बोला, "प्रभु, इतने नीचे से तो मैं आपको नहीं उठा पाऊँगा। इसके लिए तो मुझे आपके बराबर ऊँचा उठना पड़ेगा।"

बुद्ध मुसकराए और बोले, "बिल्कुल ठीक कहा तुमने। इसी प्रकार नवभिक्षुओं को दीक्षित करने के लिए तुम्हें मेरे समकक्ष होना पड़ेगा। जब तुम इतना तप कर लोगे तब किसी को भी दीक्षित करने के लिए तुम्हें मेरी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मगर इसके लिए प्रयास करना होगा। केवल इच्छा करने से कुछ नहीं होगा।" सुवास को अपनी भूल का अहसास हो गया। उसने बुद्ध से क्षमा माँगी। उस दिन से उसका व्यवहार में विनम्रता आ गई।

52. सच्चा साधु

भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों को दीक्षा देने के उपरांत उन्हें धर्मचक्र-प्रवर्तन के लिए अन्य नगरों और गाँवों में जाने की आज्ञा दी। बुद्ध ने सभी शिष्यों से पूछा, "तुम सभी जहाँ कहीं भी जाओगे वहाँ तुम्हें अच्छे और बुरे—दोनों प्रकार के लोग मिलेंगे। अच्छे लोग तुम्हारी सहायता करेंगे। बुरे लोग तुम्हारी निंदा करेंगे और गालियाँ देंगे। तुम्हें इससे कैसा लगेगा?"

हर शिष्य ने अपनी समझ से बुद्ध के प्रश्न का उत्तर दिया। एक गुणी शिष्य ने बुद्ध से कहा, "मैं किसी को बुरा नहीं समझता। यदि कोई मेरी निंदा करेगा या मुझे गालियाँ देगा तो मैं समझूँगा कि वह भला व्यक्ति है क्योंकि उसने मुझे सिर्फ गालियाँ ही दीं, मुझ पर धूल तो नहीं फेंकी।"

बुद्ध ने कहा, "और यदि कोई तुम पर धूल फेंक दे तो?"

"मैं उन्हें भला कहूँगा, क्योंकि उसने सिर्फ धूल ही तो फेंकी, थप्पड़ तो नहीं मारा।"

"मैं उन्हें बुरा नहीं कहूँगा क्योंकि उन्होंने मुझे थप्पड़ ही तो मारा, डंडा तो नहीं मारा।"

"यदि कोई डंडा मार दे तो?"

"मैं उसे धन्यवाद दूँगा, क्योंकि उसने मुझे केवल डंडे से ही मारा, हथियार से नहीं मारा।"

"लेकिन मार्ग में तुम्हें डाकू भी मिल सकते हैं, जो तुम पर घातक हथियार से प्रहार कर सकते हैं।"

"तो क्या? मैं तो उन्हें दयालु ही समझूँगा, क्योंकि वे केवल मारते ही हैं, मार डालते।"

"और यदि वे तुम्हें मार ही डालें?"

शिष्य बोला, "इस जीवन और संसार में केवल दुःख ही है। जितना अधिक जीवित रहूँगा, उतना अधिक दुःख देखना पड़ेगा। जीवन से मुक्ति के लिए आत्महत्या करना तो महापाप है। यदि कोई जीवन से ऐसे ही छुटकारा दिला दे तो उसका भी उपकार मानूँगा।"

शिष्य के वचन सुनकर बुद्ध को अपार संतोष हुआ। वे बोले, "तुम धन्य हो। केवल तुम ही सच्चे साधु हो। सच्चा साधु किसी भी दशा में दूसरे को बुरा नहीं समझता। जो दूसरों में बुराई नहीं देखता, वही सच्चा परिव्राजक होने के योग्य है। तुम सदैव धर्म के मार्ग पर चलोगे।"

53. गृहस्थ जीवन का कल्याण

एक समय भगवान् बुद्ध कोलिय प्रदेश के कर्करपत्र नामक कोलियाँ के एक निगम में विहार कर रहे थे। तब दीघजानु नामक कोलियपुत्र भगवान् के निकट आया और नमन करके एक ओर बैठकर उसने भगवान् बुद्ध को संबोधित किया :

"भंते, हम गृहस्थजन काम-भोगों में लिप्त रहनेवाले, पुत्र-पौत्रों की भीड़ में अपनी जीवन यात्रा करते रहते हैं। माला, गंध-विच्छेदन करना, काशी के चंदन का लेप और सोने-चाँदी का संग्रह करना ही हमारा जीवन लक्ष्य बन गया है। हम जैसे लोगों के लिए भी भंते, आप ऐसे धम्म की देशना करें, जिसका आचरण करके हमारा यह जन्म और परलोक भी सुखकर और हितकर हो।"

भगवान् बुद्ध ने उत्तर दिया, "एक गृहस्थ के जीवन में मंगल और सुख के लिए चार साधन सहायक होते हैं, यह चार साधन हैं :

"सतत प्रयास की उपलब्धि (उत्थान-संपदा), उपलब्ध की रक्षा (आरक्ष-संपदा), अच्छी मित्रता (कल्याणमित्रता) तथा संतुलित जीविका (समजीविता)।"

दीघजानु ने पूछा, "निरंतर प्रयास की उपलब्धि का अर्थ क्या है प्रभु?"

"जिस किसी काम से गृहस्थ आजीविका अर्जित करता है चाहे खेती से, धनुर्विद्या से, पशुपालन से, राजा की नौकरी से उसमें उसको पारंगत होना चाहिए और आलस्य नहीं करना चाहिए। उसको अपने कार्य के उचित तौर-तरीके जानने चाहिए और अपने कार्य में निपुणता और दक्षता उत्पन्न करनी चाहिए। यह निरंतर प्रयास की उपलब्धि (उत्थानपाद-संपदा) कहलाती है।"

दीघजानु ने आगे पूछा, "भंते, आरक्ष-संपदा क्या है?"

"जो संपत्ति एक गृहस्थ द्वारा मेहनत, ईमानदारी और सही तरीकों से कमाई गई होती है, उसे वह ऐसा देखभाल करके ऐसा संचालन करता है, ताकि राजा उसको हड़प न ले, चोर उसे चुरा न सके, आग उसे जला न सके, पानी उसे बहा न दे और न ही भटके हुए उत्तराधिकारी उसे ले उड़ें, यह आरक्ष-संपदा है।"

दीघजानु ने पूछा, "भंते, कल्याणमित्रता क्या है?"

भगवान् बुद्ध ने कहा, "जिस किसी ग्राम या शहर में गृहस्थ रहता है, वह सबसे बातचीत करता है, बहस करता है, चाहे वह वृद्ध या युवा तथा सुसंस्कृत हों, श्रद्धासंपन्न, शील कुशलता से पूर्ण हों, त्याग और बुद्धि से संपन्न हों। वह श्रद्धा की श्रद्धालुओं के अनुसार कार्य करता है, शीलवानों के शील के साथ, त्यागियों के त्याग के साथ, प्रज्ञावान की प्रज्ञा के साथ। यह कल्याणमित्रता कहलाती है।"

जिज्ञासु दीघजानु ने आगे पूछा, "भंते, समजीविता क्या है?"

"एक गृहस्थ अपनी आय तथा व्यय जानते हुए एक संतुलित जीवनयापन करता है, न फिजूलखर्ची, न कंजूसी, यह जानते हुए कि उसकी आय व्यय से बढ़कर रहेगी, न कि उसका व्यय आय से बढ़कर।"

"जैसे कि एक तुलाधर सुनार, या उसका शागिर्द तराजू पकड़कर जानता है कि कितना झुक गया है, कितना उठ गया है, उस प्रकार एक गृहस्थ अपनी आय तथा व्यय को जानकर संतुलित जीवन जीता है, न वह बेहद खर्चीला, न केवल बेहद कंजूस, इस प्रकार समझते हुए कि उसकी आय व्यय से बढ़कर रहेगी न कि उसका आय से अधिक होगा।"

"यदि एक गृहस्थ कम आयवाला खर्चीला जीवन व्यतीत करेगा, तो लोग उसे कहेंगे, यह व्यक्ति अपनी संपत्ति का ऐसे आनंद ले रहा है जैसे कोई बेल फल खाता है। यदि एक प्रचुर आयवाला गृहस्थ कंजूसी का जीवन व्यतीत करेगा तो लोग कहेंगे कि यह व्यक्ति भुक्खड़ की तरह मरेगा।

"इस प्रकार संचित धन संपत्ति, चार प्रकार से नाश होता है :

1. अधिक भोग विलास, 2. मदिरापान की लत, 3. जुआ और 4. पापी लोगों से दोस्ती, संगति तथा साँठ-गाँठ।

"जैसे कि एक बड़े तालाब में चार जल प्रवेश तथा चार जल निकास के रास्ते हों, यदि कोई व्यक्ति प्रवेश मार्ग बंद कर दे तथा निकास मार्ग खोल दे और तब पर्याप्त वर्षा न हो, तो तालाब में जल की कमी की उम्मीद रहेगी, लेकिन वृद्धि की नहीं, वैसे ही संचित संपत्ति के विनाश के चार रास्ते हैं—अधिक भोग विलास, मदिरापान की लत, जुआ और पापी लोगों से दोस्ती, संगति तथा साँठ-गाँठ।

"जमा पूँजी की समृद्धि के चार मार्ग हैं :

1. काम भोगों में संयम, 2. मदिरापान में संयम, 3. जुए में रत न होना और 4. अच्छे लोगों से मित्रता, संगति तथा साँठ-गाँठ।

"जैसे कि एक बड़े तालाब में चार जल प्रवेश तथा चार जल निकास के रास्ते हों, यदि कोई व्यक्ति प्रवेश मार्ग खोल दे तथा निकास मार्ग बंद दे और तब पर्याप्त वर्षा हो जाए, तो तालाब में जल के बढ़ने की उम्मीद रहेगी, लेकिन घटने की नहीं, वैसे ही संचित संपत्ति की वृद्धि के चार रास्ते हैं। ये चार बातें एक गृहस्थ के इसी जीवनकाल में कल्याण तथा प्रसन्नता में सहायक हैं।"

भगवान् बुद्ध ने दीघजानु से आगे कहा कि "इसके अतिरिक्त एक गृहस्थ के कल्याण के लिए चार बातें आवश्यक हैं—

1. श्रद्धा की उपलब्धि (श्रद्धा संपदा), 2. शील की उपलब्धि (शील संपदा) 3, त्याग की उपलब्धि (त्याग संपदा) और 4. प्रज्ञा की उपलब्धि (प्रज्ञा संपदा)

दीघजानु ने पूछा, "भंते, श्रद्धा की उपलब्धि क्या है?"

भगवान् ने उत्तर दिया, "इसमें गृहस्थ श्रद्धा संपन्न होता है, वह समयक संबुद्ध तथागत की बुद्धत्व उपलब्धि से आश्वस्त होता है, पूर्णतया ज्ञान प्राप्त, विद्या तथा आचरणों से संपन्न,

सुगत, लोकों को जाननेवाले, सिखाए जाने योग्य मनुष्यों के नायक, देव तथा मनुष्यों के गुरु, सर्वज्ञ तथा धन्य हैं, इसे कहते हैं श्रद्धा संपदा।"

दीघजानु ने पूछा, "भंते, शीलों की उपलब्धि क्या है?"

भगवान् बोले, "इसमें गृहस्थ प्राणी हत्या से, चोरी से, यौन-मिथ्याचार से, झूठ बोलने से तथा नशीले पदार्थ से जो स्मृतिनाशक तथा प्रमाद उत्पन्न करता है—विरत रहता है। यह कहलाता है शील संपदा।"

"भंते, त्याग की उपलब्धि क्या है?"

बुद्ध ने बोला, "इसमें गृहस्थ अपने को चित्तमलों तथा धन-लोलुपता से मुक्त कर घर में रहता है, त्याग में संलग्न, मुक्त हस्त, उदारता में आनंदित, जरूरतमंदों की सहायता करनेवाला, दान दक्षिणा में प्रसन्न। यह कहलाता है त्याग संपदा।"

"तो भंते, प्रज्ञा की उपलब्धि क्या है?"

जब दीघजानु ने यह प्रश्न किया तो भगवान् बोले, "एक गृहस्थ जो प्रज्ञावान है, वह ऐसी प्रज्ञा से संपन्न है, पंच स्कंधों की उत्पत्ति तथा लय को समझता है, वह आर्य वपस्सना से संपन्न है, जो दुःख विमुक्ति का लाभ देती है, इसे कहते हैं प्रज्ञा की उपलब्धि—प्रज्ञा संपदा।"

54. आम्रपाली और भिक्षु

बुद्ध अपने एक प्रवास में वैशाली आए। कहते हैं कि उनके साथ दस हजार शिष्य भी हमेशा साथ रहते थे। सभी शिष्य प्रतिदिन वैशाली की गलियों में भिक्षा माँगने जाते थे। वैशाली में ही आम्रपाली का महल भी था। वह वैशाली की सबसे सुंदर स्त्री और नगरवधू थी। वह वैशाली के राजा, राजकुमारों, और सबसे धनी और शक्तिशाली व्यक्तियों का मनोरंजन करती थी। एक दिन उसके द्वार पर भी एक भिक्षुक भिक्षा माँगने के लिए आया। उस भिक्षुक को देखते ही वह उसके प्रेम में पड़ गई। वह प्रतिदिन ही राजा और राजकुमारों को देखती थी पर मात्र एक भिक्षापात्र लिये हुए उस भिक्षुक में उसे अनुपम गरिमा और सौंदर्य दिखाई दिया।

वह अपने परकोटे से भागी आई और भिक्षुक से बोली, "आइए, कृपया मेरा दान गृहण करें।"

उस भिक्षुक के पीछे और भी कई भिक्षुक थे। उन सभी को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। जब युवक भिक्षु आम्रपाली की भवन में भिक्षा लेने के लिए गया तो वे ईर्ष्या और क्रोध से जल उठे।

भिक्षा देने के बाद आम्रपाली ने युवक भिक्षु से कहा, "तीन दिनों के बाद वर्षाकाल प्रारंभ होनेवाला है। मैं चाहती हूँ कि आप उस अवधि में मेरे महल में ही रहें।"

युवक भिक्षु ने कहा, "मुझे इसके लिए अपने स्वामी तथागत बुद्ध से अनुमति लेनी होगी। यदि वे अनुमति देंगे तो मैं यहाँ रुक जाऊँगा।"

उसके बाहर निकलने पर अन्य भिक्षुओं ने उससे बात की। उसने आम्रपाली के निवेदन के बारे में बताया। यह सुनकर सभी भिक्षु बड़े क्रोधित हो गए। वे तो एक दिन के लिए ही इतने ईर्ष्यालु हो गए थे और यहाँ तो पूरे चार महीनों की योजना बन रही थी। युवक भिक्षु के बुद्ध के पास पहुँचने से पहले ही कई भिक्षु वहाँ पहुँच गए और उन्होंने इस वृत्तांत को बढ़ा-चढ़ाकर सुनाया, "वह स्त्री वैश्या है और एक भिक्षु वहाँ पूरे चार महीनों तक कैसे रह सकता है?"

बुद्ध ने कहा, "शांत रहो। उसे आने दो। अभी उसने रुकने का निश्चय नहीं किया है। वह वहाँ तभी रुकेगा, जब मैं उसे अनुमति दूँगा।"

युवक भिक्षु आया और उसने बुद्ध के चरण छूकर सारी बात बताई, "आम्रपाली यहाँ की नगरवधू है। उसने मुझे चातुर्मास में अपने महल में रहने के लिए कहा है। सारे भिक्षु किसी-न-किसी के घर में रहेंगे। मैंने उसे कहा है कि आपकी अनुमति मिलने के बाद ही मैं वहाँ रह सकता हूँ।"

बुद्ध ने उसकी आँखों में देखा और कहा, "तुम वहाँ रह सकते हो?"

यह सुनकर कई भिक्षुओं को बहुत बड़ा आघात पहुँचा। वे सभी इस पर विश्वास नहीं कर पा रहे थे कि बुद्ध ने एक युवक शिष्य को एक वैश्या के घर में चार मास तक रहने के लिए अनुमति दे दी। तीन दिनों के बाद युवक भिक्षु आम्रपाली के महल में रहने के लिए चला गया। अन्य भिक्षु नगर में चल रही बातें बुद्ध को सुनाने लगे, "सारे नगर में एक ही चर्चा हो रही है कि एक युवक भिक्षु आम्रपाली के महल में चार महीनों तक रहेगा।"

बुद्ध ने कहा, "तुम सब अपनी चर्या का पालन करो। मुझे अपने शिष्य पर विश्वास है। मैंने उसकी आँखों में देखा है कि उसके मन में अब कोई इच्छाएँ नहीं हैं। यदि मैं उसे अनुमति न भी देता तो भी उसे बुरा नहीं लगता, मैंने उसे अनुमति दी और वह चला गया। मुझे उसके

ध्यान और संयम पर विश्वास है। तुम सभी इतने व्यग्र और चिंतित क्यों हो रहे हो? यदि उसका धम्म अटल है तो आम्रपाली भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगी, और यदि उसका धम्म निर्बल है तो वह आम्रपाली के सामने समर्पण कर देगा। यह तो भिक्षु के लिए परीक्षण का समय है, बस चार महीनों तक प्रतीक्षा कर लो। मुझे उस पर पूर्ण विश्वास है। वह मेरे विश्वास पर खरा उतरेगा।"

उनमें से कई भिक्षुओं को बुद्ध की बात पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने सोचा, "वे उस पर नाहक ही इतना भरोसा करते हैं। भिक्षु अभी युवक है और आम्रपाली बहुत सुंदर है। वे भिक्षु संघ की प्रतिष्ठा को खतरे में डाल रहे हैं।" लेकिन वे कुछ कर भी नहीं सकते थे।

चार महीनों के बाद युवक भिक्षु विहार लौट आया और उसके पीछे-पीछे आम्रपाली भी बुद्ध के पास आई। आम्रपाली ने बुद्ध से भिक्षुणी संघ में प्रवेश देने की आज्ञा माँगी। उसने कहा, "मैंने आपके भिक्षु को अपनी ओर खींचने के हरसंभव प्रयास किए पर मैं हार गई। उसके आचरण ने मुझे यह मानने पर विवश कर दिया कि आपके चरणों में ही सत्य और मुक्ति का मार्ग है। मैं अपनी समस्त संपदा भिक्षु संघ के लिए दान में देती हूँ।"

आम्रपाली के महल और उपवनों को चातुर्मास में सभी भिक्षुओं के रहने के लिए उपयोग में लिया जाने लगा। वह बुद्ध के संघ में सबसे प्रतिष्ठित भिक्षुणियों में से एक थी।

55. पटाचारा

पटाचारा श्रावस्ती के नगरसेठ की पुत्री थी। किशोरवय होने पर वह अपने घरेलू नौकर के प्रेम में पड़ गई। जब उसके माता-पिता उसके विवाह के लिए उपयुक्त वर खोज रहे थे, तब वह नौकर के साथ भाग गई। दोनों अपरिपक्व पति-पत्नी एक छोटे से नगर में जा बसे। कुछ समय बाद पटाचारा गर्भवती हो गई। स्वयं को अकेले पाकर उसका दिल घबराने लगा और उसने पति से कहा, "हम यहाँ अकेले रह रहे हैं। मैं गर्भवती हूँ और मुझे किसी की सहायता की आवश्यकता है। आप आज्ञा दें तो मैं अपने माता-पिता के घर चली जाऊँ?"

पति पटाचारा को उसके मायके नहीं भेजना चाहता था। इसलिए उसने कोई बहाना बनाकर उसका जाना स्थगित कर दिया।

लेकिन पटाचारा के मन में माता-पिता के घर जाने की इच्छा बड़ी बलवती हो रही थी। एक दिन जब उसका पति काम पर गया हुआ था, तब उसने पड़ोसी से कहा, "आप मेरे स्वामी को बता देना कि मैं कुछ समय के लिए अपने माता-पिता के घर जा रही हूँ।"

जब पति को इसका पता चला तो उसे बहुत बुरा लगा। उसे अपने ऊपर ग्लानि भी हुई कि उसके कारण ही इस कुलीन कन्या की इतनी दुर्गति हो रही है। वह उसे ढूँढ़ने के लिए उसी मार्ग पर चल दिया। रास्ते में पटाचारा उसे मिल गई। पति ने उसे समझा-बुझाकर घर वापस लिवा लिया। समय पर पटाचारा को प्रसव हुआ। सभी सुखपूर्वक रहने लगे।

पटाचारा जब दूसरी बार गर्भवती हुई तब पति स्वयं उसे उसके माता-पिता के घर ले जाने के लिए तैयार हो गया।

मार्ग में जोरों की आँधी-वर्षा होने लगी। पटाचारा ने पति से कहा कि वह किसी सुरक्षित स्थान की खोज करे। पति झाड़ियों से होकर गुजर रहा था तभी उसे एक विषधर साँप ने काट लिया और वह तत्क्षण मृत्यु को प्राप्त हो गया।

पटाचारा अपने पति की प्रतीक्षा करती रही और ऐसे में ही उसे प्रसव हो गया। थोड़ी शक्ति जुटाकर उसने दोनों बच्चों को साथ लिया और पति को खोजने निकल पड़ी।

जब उसे पति मृत मिला तो वह फूट-फूटकर रोने लगी, "हाय! मेरे कारण ही मेरे पति की मृत्यु हो गई!"

अब अपने माता-पिता के सिवा उसका कोई न था। वह उनके नगर की ओर बढ़ चली। रास्ते में नदी पड़ती थी। उसने देखा कि दोनों बच्चों को साथ लेकर नदी पार करना कठिन था इसलिए बड़े बच्चे को उसने एक किनारे पर बिठा दिया और दूसरे को छाती से चिपकाकर दूसरे किनारे को बढ़ चली। वहाँ पहुँचकर उसने छोटे बच्चे को कपड़े में लपेटकर झाड़ियों में रख दिया और बड़े बच्चे को लेने के लिए वापस नदी में उतर गई। नदी पार करते समय उसकी आँखें छोटे बच्चे पर ही लगी हुई थीं। उसने देखा कि एक बड़ा गिद्ध बच्चे पर झपटकर उसे ले जाने की चेष्टा कर रहा है। वह चीखी-चिल्लाई, लेकिन कुछ नहीं हुआ। दूसरे किनारे पर बैठे बच्चे ने जब अपनी माँ की चीख-पुकार सुनी तो उसे लगा कि माँ उसे बुला रही है। वह झटपट पानी में उतर गया और तेज बहाव में बह गया।

छोटे बच्चे को गिद्ध ले उड़ा और बड़ा नदी में बह गया! उसका छोटा सा परिवार पूरा नष्ट हो गया। वह विलाप करती हुई अपने पिता के घर को चल दी। रास्ते में उसे अपने नगर का एक यात्री मिल गया, जिसने उसे बताया कि नगरसेठ का परिवार अर्थात् उसके माता-पिता और सभी भाई-बहन कुछ समय पहले घर में आग लग जाने के कारण मर गए।

यह सुनते ही पटाचारा पर दुःखों का पहाड़ टूट पड़ा। उसे तन-मन की कोई सुध न रही। वह पागल होकर निर्वस्त्र घूमने लगी। उसके मुख से ये ही शब्द निकलते, "पति मर गया। बड़ा

बेटा डूब गया। छोटे को गिद्ध खा गया। माता-पिता और भाई-बहनों को चिता भी नसीब नहीं हुई।"

ऐसे ही विलाप करती निर्वस्त्र घूमती-फिरती पटाचारा को सभी अपमानित और लांछित करके यहाँ से वहाँ भगा देते थे।

जेतवन में भगवान् बुद्ध धर्मोपदेश दे रहे थे। पटाचारा अनायास ही वहाँ आ गई। उपस्थितों ने कहा, "अरे, ये तो पागल है। इसे यहाँ से भगाओ।" बुद्ध ने उन्हें रोकते हुए कहा, "इसे मत रोको, मेरे पास आने दो।" पटाचारा जब बुद्ध के कुछ समीप आई तो बुद्ध ने उससे कहा, "बेटी, अपनी चेतना को सँभाल।" भगवान् को अपने समक्ष पाकर पटाचारा को कुछ होश आया और अपनी नग्नता का बोध हो आया। किसी ने उसे चादर से ढाँक दिया। वह फूट-फूटकर रोने लगी, "भगवान्, मेरे पति को साँप ने डस लिया और छोटे-छोटे बच्चे मेरी आँखों के सामने मारे गए। मेरे माता-पिता, बंधु-बाँधव सभी जलकर मर गए। मेरा अब कोई नहीं है। मेरी रक्षा करो।"

बुद्ध ने उससे कहा, "दुःखी मत हो। अब तुम मेरे पास आ गई हो। जिन परिजनों की मृत्यु के लिए तुम आँसू बहा रही हो, ऐसे ही अनंत आँसू तुम जन्म-जन्मांतरों से बहाती आ रही हो। उनसे भरने के लिए तो महासमुद्र भी छोटे पड़ जाएँगे। तेरी रक्षा कोई नहीं कर सकता। जब मृत्यु आती है तो कोई परिजन आदि काम नहीं आते।"

यह सुनकर पटाचारा का शोक कुछ कम हुआ। उसने बुद्ध से साधना की अनुमति माँगी। बुद्ध ने उसे अपने संघ में शरण दे दी। धर्म के परम स्रोत के इतने समीप रहकर पटाचारा का दुःख जाता रहा। वह नित्य ध्यान व ज्ञान की साधना में निपुण हो गई।

एक दिन स्नान करते समय उसने देखा कि देह पर पहले डाला गया पानी कुछ दूर जाकर सूख गया, फिर दूसरी बार डाला गया पानी थोड़ी और दूर जाकर सूख गया, और तीसरी बार डाला गया पानी उससे भी आगे जाकर सूख गया।

इस अत्यंत साधारण घटना में पटाचारा को समाधि का सूत्र मिल गया। पहली बार उड़ले गए पानी के समान कुछ जीव अल्पायु में ही मर जाते हैं, दूसरी बार उड़ले गए पानी के समान कुछ जीव मध्यम वयता में चल बसते हैं और तीसरी बार उड़ले गए पानी के जैसे कुछ जीव अंतिम वयस में मरते हैं। सभी मरते हैं। सभी अनित्य हैं।"

ऐसे में पटाचारा को यह भान हुआ जैसे अनंत करुणावान प्रभु बुद्ध उससे कह रहे हैं, "हाँ, पटाचारे, समस्त प्राणी मरणधर्मा हैं।"

इस प्रकार पटाचारा उन बौद्ध साधिकाओं में गिनी गई जिनको निःप्रयास ही एक जीवनकाल में ही निर्वाण प्राप्त हो गया।

56. समझ से उसके मतलब

भगवान् बुद्ध सांध्यकालीन प्रवचन देकर हमेशा की तरह तीन बार बोले—अब अपना-अपना कार्य संपन्न करें। और उठकर अपने विश्राम स्थल की ओर बढ़ गए। आनंद भी उनके पीछे-पीछे वहाँ पहुँच गया। आज आनंद ने आखिर बुद्ध से पूछ ही लिया कि आप एक ही बात को तीन बार क्यों दोहराते हैं?

बुद्ध की आदत थी कि हर बात वे अपने शिष्यों को तीन बार समझा देते थे। अब आनंद को ये शायद फालतू की बात ही लगती होगी कि अब रोज-रोज ये क्या तीन बार दोहराना कि जाओ, अब अपना अपना काम करो। अरे भाई स्वाभाविक और समझी हुई बात है कि बुद्ध के भिक्षु हो तो, सांध्य कर्म और सभा के बाद सब ईश्वर चिंतन और ध्यान करो। अब ये भी कोई रोज-रोज समझाने की बात है भला?

अब बुद्ध ने कहा, "आनंद, तुम कहते तो ठीक हो की भिक्षु को रोज-रोज क्या समझाना कि जाओ, अब अपना-अपना काम करो। पर तुमने शायद ध्यान नहीं दिया की यहाँ धर्म सभा में आस-पास की बस्तियों के भी काफी सारे लोग आते हैं। और वे शायद पहली बार भी आए हुए हो सकते हैं, इसलिए उनकी सहूलियत के लिए भी ये जरूरी हो जाता है।" पर आनंद के हाव-भाव से महात्मा बुद्ध को ऐसा लगा कि वह इस बात से शायद सहमत नहीं है।

अब बुद्ध बोले, "आनंद, अब तुम एक काम करो, आज की ही सभा में जितने लोग बैठे थे, उनमें एक वेश्या और एक चोर भी प्रवचन सुनने आए थे। और संन्यासी तो खैर अनेक थे ही। अब तुम एक काम करना कि सुबह इन तीनों (संन्यासी, वेश्या और चोर) से जाकर पूछना कि कल रात्रि धर्म-सभा में बुद्ध ने जो आखिरी वचन कहे उनसे वे क्या समझे?" अब आनंद के आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा। उसको खुद नहीं मालूम कि इतनी बड़ी हजारों की धर्म-सभा में कौन आया और कौन नहीं आया? और भगवान् बुद्ध एक-एक आदमी को जानते हैं! और उसे आश्चर्य हुआ कि वे कैसे पहचान गए कि कौन वेश्या है और कौन चोर है। घोर आश्चर्य हुआ आनंद को। उसने बुद्ध से उनके नाम-पते लेकर मुश्किल में रात्रि काटी और सुबह होते ही तहकीकात में लग गया कि वाकई वे सब वही हैं जो बुद्ध ने बताए हैं या कुछ और हैं?

सुबह होते ही आनंद के सामने जो पहला संन्यासी पड़ा, उससे आनंद ने पूछा, "रात्रि सभा में बुद्ध ने जो आखिरी वचन कहे कि अब जाकर अपना-अपना काम करो। उन शब्दों से आपने क्या समझा?"

भिक्षु बोला, "इसमें समझनेवाली क्या बात है? भिक्षु का नित्य कर्म है कि शयन पूर्व का ध्यान करते-करते विश्राम करो।" आनंद को इसी उत्तर की अपेक्षा थी, अतः वह अब तेजी से नगर की ओर चल दिया।

आनंद सीधे चोर के घर पूछते-पूछते पहुँच गया। चोर भिक्षु आनंद को देखते ही गद्गद हो गया और उनकी सेवा में लग गया। आनंद को बैठाकर उनसे आने का प्रयोजन पूछा। आनंद ने अपना सवाल दोहरा दिया।

चोर बड़े ही विनम्र शब्दों में बोला, "भिक्षु, अब आपको क्या बताऊँ? कल रात पहली बार बुद्ध की धर्मसभा में गया और उनके प्रवचन सुनकर जीवन सफल हो गया। फिर भगवान् ने कहा कि अब अपना-अपना काम करो। तो मैं तो चोर हूँ अब बुद्ध के प्रवचन सुनने के बाद झूठ तो बोलूँगा नहीं। कल रात मैं वहाँ से चोरी करने चला गया और इतनी बड़ी चोरी की, जिससे लग रहा है कि जीवन में पहली बार इतना तगड़ा दाँव लगा है और आगे चोरी करने की जरूरत ही नहीं है।" आनंद को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह वहाँ से वेश्या के घर की तरफ चल दिया।

वेश्या भिक्षु आनंद को देखते ही टप-टप प्रेमाश्रु बहाते हुए उनके लिए भिक्षा ले आई और अंदर आकर बैठने के लिए आग्रह किया। आनंद अंदर जाकर बैठ गया और अपना सवाल दोहरा दिया।

वेश्या ने जवाब दिया, "भिक्षु, ये भी कोई पूछने की बात है? भगवान् बुद्ध ने कहा कि अब जाओ अपना-अपना काम करो, इसलिए उनके वचन टालने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। चूँकि मेरा काम तो नाचना-गाना है सो वहाँ से प्रवचन सुनकर आने के बाद तैयार हुई और महफिल सजाई, और यकीन मानो कल जैसी महफिल तो कभी सजी ही नहीं। और मेरे सारे ग्राहक, जिनमें बड़े-बड़े राजे-महाराजे भी थे। उन सबने प्रसन्न होकर अपना सबकुछ यहाँ लुटा दिया। अब मुझे धन के लिए ये कर्म करने की कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। बुद्ध की कृपा से एक रात में इतना सबकुछ हो गया।" आनंद बड़ा आश्चर्यचकित होकर वहाँ से वापस बुद्ध के पास लौट गया।

आनंद ने जाकर बुद्ध को प्रणाम किया और सारी बात बताई। अब बुद्ध बोले, "आनंद, इस संसार में जितने जीव हैं उतने ही मस्तिष्क हैं, और बात तो एक ही होती है, पर हर आदमी

अपनी-अपनी समझ से उसके मतलब निकाल लेता है। अब तुम समझ ही गए होंगे की बात तो एक ही थी पर सबकी समझने की बुद्धि अलग-अलग थी। इसीलिए मैं एक बात को तीन बार कहता हूँ कि कोई गलती नहीं हो जाए पर उसके बाद भी सब अपने हिसाब से ही समझते हैं, और इसका कोई उपाय नहीं है। ये सृष्टि ही ऐसी है।"